Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु गोविन्दसिंह : जीवन और दर्शन

Guru Govind Singh
Jeevan Aur Darshan.

सम्पादक
नारायण भक्त
Narayan Bakt

SPS
294.6 G 95 GN
32851

Sanmarg Prakashan Delhi-6,

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

32851
Cost 4.50
Date 5-8-70

Sri Pratap Singh
Library
SRINAGAR

H 24.553
G95GN

© : सन्मार्ग प्रकाशन

मूल्य : चार रुपये पचास पैसे
संस्करण : १९६९
प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन,
१६, यू० बी० बँगलो रोड, दिल्ली–७
मुद्रक : भारत मुद्रणालय
के-२०, नवीन शाहदरा, दिल्ली–३२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरुजी की त्रि-शताब्दी समारोह

को

स्मृति को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

922.553

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भूमिका

यह बात निर्विवाद है कि भारत की स्वतंत्रता भारतवासियों के लिए बहुत मंहगी पड़ी है और स्वतंत्रता के स्वर्णिम शिखर तक पहुँचने में हम अनेक प्रकार के दुख, आतंक और संत्रास के भार से गुज़रे। किन्तु, यदि यही तथ्य किसी स्वातंत्र्य-प्रेमी के सामने स्पष्ट किया जाए, तो वह कह उठेगा···"स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए बहुत सारे बलिदान भी थोड़े ही होते हैं।" वर्त्तमान युग में यदि हमारे देश के महान् बलिदानी गुरु गोविन्दसिंह जीवित होते, तो संभवतः इस संबंध में उनके भी यही शब्द होते ; क्योंकि उन्होंने देश और जातीय अभिमान की सुरक्षा के लिए इस सत्य को स्वयं अपने जीवन और बलिदानमय कर्म से चरितार्थ किया था।

महान् विचारक इमर्सन ने ठीक ही कहा है···"शहीद के खून की एक बूंद किसी विद्वान की स्याही से बहुत ज्यादा कीमती होती है।" इस दृष्टि से देश की स्वतंत्रता के लिए रक्त-तर्पण करने वाले परम पूज्य गुरु गोविन्दसिंहजी के संबंध में जितनी बिखरी हुई सामग्री और सूचना प्रकाश में आए, थोड़ी ही है।

१९६७ ई० में गुरुजी के जन्म स्थान पटना (बिहार) में उनकी तीन सौवीं जयन्ती मनाई गई। उस समय अधिकारी विद्वानों, विशेषज्ञों और इतिहासज्ञों द्वारा लेख, और निबन्ध के रूप में अनेकानेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं। इस पुस्तक की तैयारी में अथवा सम्पादन में इस सामग्री को सम्पादित एवं संगृहीत किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक को आपके हाथों तक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पहुंचाने में मैं एक निमित्त मात्र रहा हूँ। एतदर्थ, उन रचनाकारों के प्रति मेरा हृदय स्वतः कृतज्ञ है, इसमें सन्देह नहीं। मैं आशा करता हूँ कि यह पुस्तक सभी जातियों, वर्गों और सम्प्रदायों के लोगों के लिए संजीवनी सिद्ध होगी ; क्योंकि गुरु गोविन्दसिंहजी स्वतंत्रता के लिए शहीद हुए और जो स्वतंत्र नहीं है, वह सही माने में जीवित भी तो नहीं है।

—संपादक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

क्रम

१. जीवन-दर्शन	पं० जयचन्द्र विद्यालंकार	९
२. युग-प्रवर्त्तक	सरदार उज्ज्वलसिंह	१३
३. जीवन पर एक दृष्टि	डॉ० महीपसिंह	२२
४. संस्कृति के संरक्षक	डॉ० हरनाथ शुक्ल	३४
५. एक शौर्य प्रतीक	डॉ० ओमप्रकाश शास्त्री	४२
६. बाल-लीला : मैनी संगत	पं० बलवीरसिंह शास्त्री	४९
७. गुरुजी का बचपन	श्री रामजी मिश्र 'मनोहर'	५७
८. एक महान् गुरु	श्री गुरुवचनसिंह 'तालिब'	६५
९. भारत-धर्म अवतार	प्रो० आनन्दनारायण शर्मा	७०
१०. साधक कवि	प्रो० सुदेश भाटिया	७९
११. गुरुजी के विजय-पत्र	श्री भजनसिंह	८८
१२. वे पावन स्थल	श्री महेन्द्रसिंह 'प्रभाकर'	९७
१३. तखत श्री हरिमन्दिरजी साहेब	श्री सत्यदेव नारायण सिन्हा	१०५
१४. गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि	श्री यशवन्तसिंह मोंगा	११०
१५. भाषागत विशेषताएँ	डॉ० रामप्रकाश गुप्त	११७
१६. गुरुजी की विरासत	प्रो० सतबीरसिंह	१२६
१७. रससिद्ध कवि	श्री भवानीशंकर त्रिवेदी	१३६
१८. सामाजिक जीवन पर प्रभाव	श्री शिवकुमार मिश्र	१४०
१९. गुरुजी का अंतिम समय	डॉ० बनारसी प्रसाद	१४७
२०. परमवीर	श्री गुरुदेवसिंह ग्रेवाल	१५५
२१. एकता के जन्मदाता	श्री नारायण भक्त	१६१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु गोविन्दसिंह जी का ऐतिहासिक चित्र

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

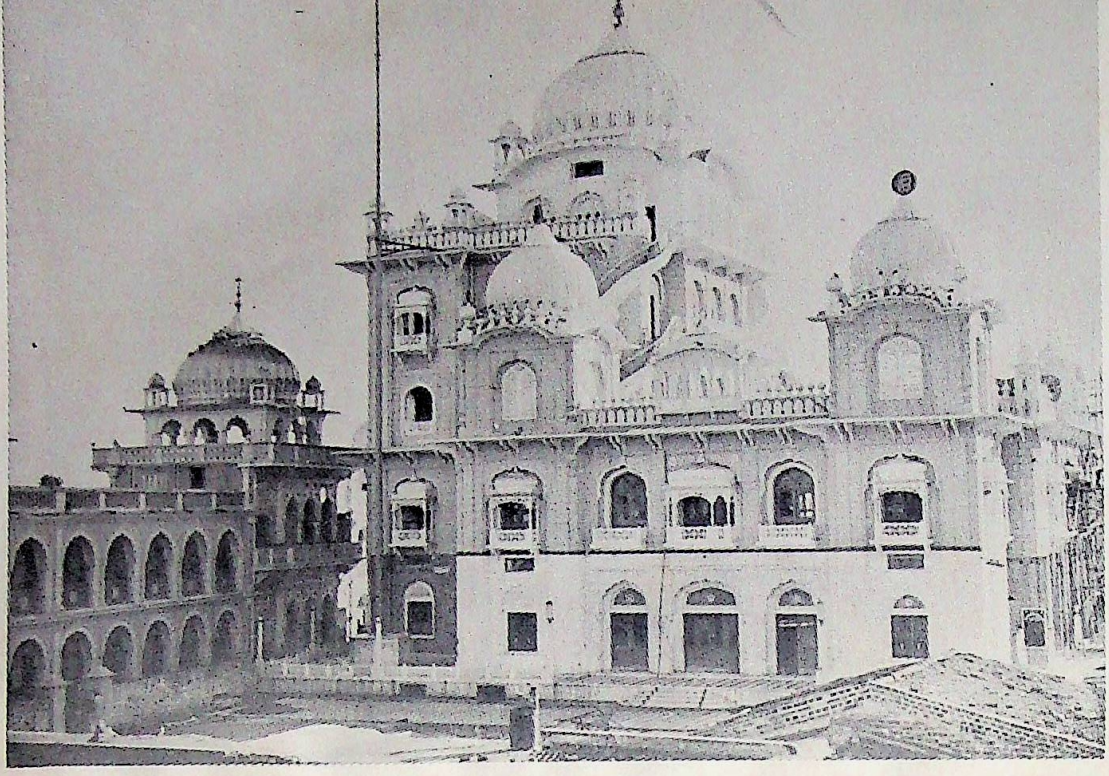

तख्त हरिमन्दिर, पटना शहर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

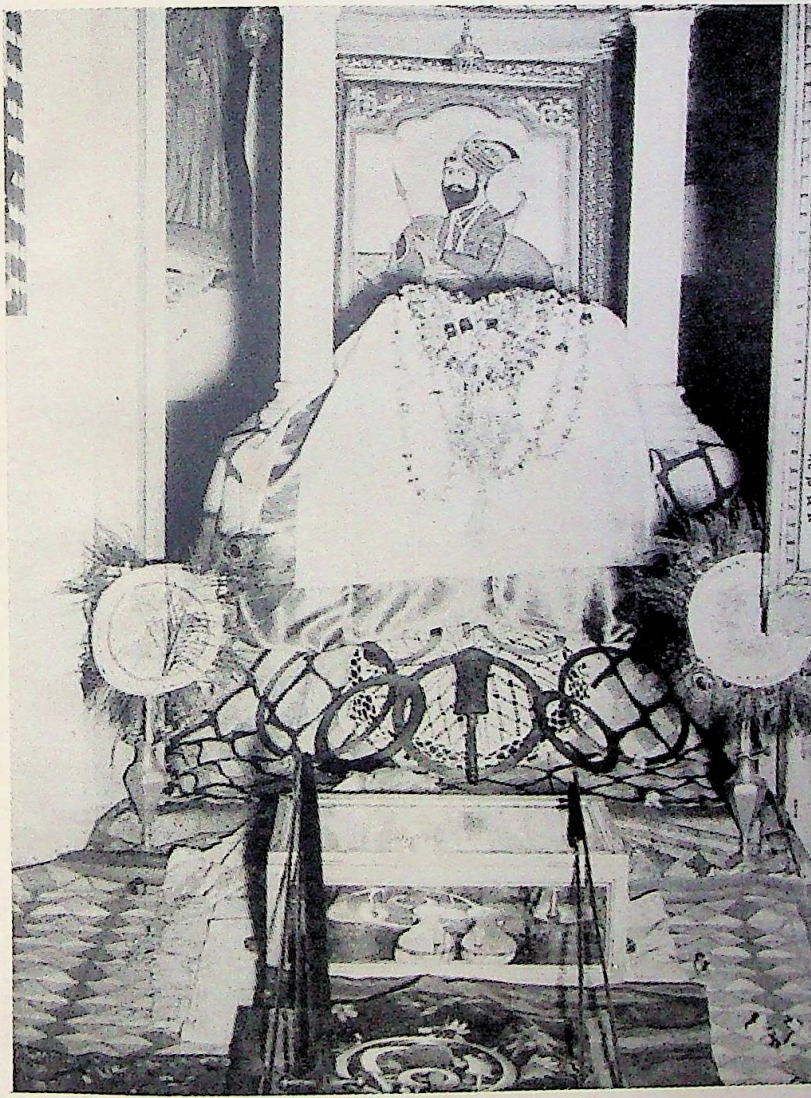

गुरुजी के पवित्र अवशेष (तख्त हरिमन्दिर जी, पटना में सुरक्षित)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

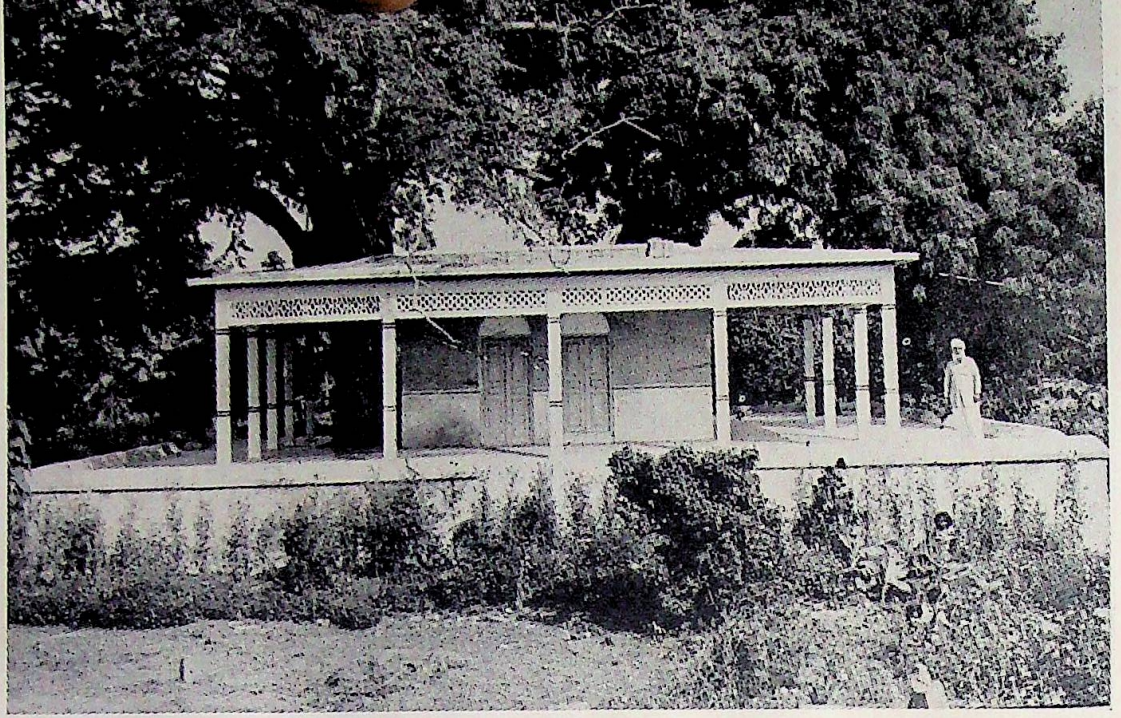

गुरु का बाग पटना शहर
(गुरुद्वारे से चार मील पूर्व, जहां गुरु तेगबहादुर अपने शिष्यों के साथ पधारे थे।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पं० जय चन्द्र विद्यालंकार

१. जीवन-दर्शन

कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि पर अर्जुन के झिझकने पर मथुरा-द्वारका के गोविन्द ने अपनी बातचीत से उसकी डगमगाहट दूर की थी। शताब्दियों बाद किसी दार्शनिक कवि ने उस बातचीत की भावना को फैलाकर भगवद्गीता का रूप दे दिया, जिसमें भारतीय तत्त्वज्ञान का सार भरा हुआ है। पंजाब के गोविन्द को नांदेड़ के एकान्तवास में माधोदास वैरागी मिला, जिसे उसने अपनी बातचीत द्वारा वैराग्य-भावना से उठाकर बन्दा बहादुर बनाते हुए अपने जीवन का शेष कार्य सौंपा। कोई आधुनिक कवि चाहे तो गुरु गोविन्दसिंह और बन्दा बहादुर की उस बातचीत को नई गीता का रूप दे दे और उसमें भारतीय तत्त्वज्ञान का निचोड़ भर दे।

संक्षेप में गुरु गोविन्दसिंह का चरित्र भारतीय तत्त्वज्ञान का मूर्त जीवन आदर्श है। भारतीय विचारकों का धार्मिक आदर्श है, शक्ति और संयम। संयम में ही मनुष्य की शक्ति, मनुष्य की मनुष्यता प्रकट होती है। आदर्श संयमी वह है, जिसे काम डिगा न सके, क्रोध डगमगा न सके, भय घबड़ा न सके, शोक मुरझा न सके, लोभ फिसला न सके और मोह बांध और बहका न सके। ऐसे व्यक्ति को कहते हैं वीतराग और उसकी मनःस्थिति का नाम है वैराग्य। वैरागी शब्द सुनकर उन कमोज़र आदमियों का ध्यान न कीजिये जो दुनिया की कशमकश से हारकर गेरुआ पहन बैठते हैं। वास्तविक वैरागी कर्मक्षेत्र के घमासान में रहता है। संसार के कर्मक्षेत्र में वह किसी बड़े आदर्श की तरफ ध्यान लगाये विचरता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

केवल कर्म को भी मानव-जीवन का ध्येय नहीं कह सकते। आधुनिक शहरों की दौड़-धूप में···स्टॉक एक्सचेंज, सट्टा बाज़ार, थियेटर हॉल और घुड़दौड़ के तमाशों की दौड़-धूप में जीवन बिताने वाले भी कर्मव्यग्र रहते हैं। कर्म ही पूजा है (वर्क इज वर्शिप) इस पाश्चात्य कथन में जो विचार है "जैता चलूँ तेती परदखना जो कुछ करूँ सो पूजा" में उससे कुछ अतिरिक्त विचार भी है। बेशक कर्म ही पूजा है, पर वह निष्काम कर्म होना चाहिये और निष्कामता का साधन है संयम। मनुष्य और राष्ट्रों के विकास में निष्काम कर्म के लिये हमेशा गुंजाइश बनी रहेगी। सत्यं शिव सुन्दरम् की खोज कभी पूर्णता तक न पहुँचेगी, उसमें सदा कुछ न कुछ आगे करने को बाकी रहेगा। इसीलिए यह निष्काम कर्मयोग का सिद्धाँत युग-युगान्तर में आदर्शपरायण व्यक्तियों के लिये किसी न किसी रूप में कार्यक्षेत्र उपस्थित करता रहा है और रहेगा।

जिस काल गुरु नानकदेव पंजाब में प्रकट हुए, साम्प्रदायिक क्रियाकलाप और पूजा-पाठ के बाह्य आडम्बरों के बोझ से जनता का हृदय इतना दब गया था कि वह मानो स्वाभाविक धार्मिक स्पन्दन का अनुभव ही न करता था। उस काल किसी ऐसी लहर की आवश्यकता थी जो सर्वसाधारण के हृदय को हिला दे, उसमें वस्तुतः धार्मिक चेतना पैदा कर दे। वैसी चेतना गुरु नानक के भक्तिमार्ग ने जनता में जगाई। उस चेतना का पूरा उपयोग करना, उसे अपनी पहुँच की सीमा तक ले जाना गुरु गोविन्द का काम था। गुरु नानक ने जो क्षेत्र तैयार किया था, गुरु गोविन्द ने उसमें बीज बोया··· भक्ति से सधे हुए हृदयों को ऊँचे कर्म में लगा दिया। पूर्ण वैराग्य रखते हुए भी संसार से भाग नहीं जाना होगा, यह भावना थी जो गुरु नानक ने अपने शिष्यों···सिक्खों···को दी। गुरु गोविन्द ने विरक्त कार्य की उस भावना को ऊँचे आदर्श में लगा दिया।

गुरु गोविन्दसिंह अद्वितीय क्रांतिकारी थे। असाध्य-साधन उनका ध्येय था। "चिड़ियों से मैं बाज तुड़ाऊँ" और "सवा लाख से एक लड़ाऊँ" इन वाक्यों को आज हम बिना वेदना के पढ़ जाते हैं, पर याद रखिये, उस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

काल के वैध सुधार-वादियों को वह उन्मत्त प्रलाप लगता रहा होगा।

और, तब से आज तक जब-जब पंजाबी किसी आदर्श के लिये लड़े हैं, जब-जब वे कोई ऊँचा काम करने के लिये आगे बढ़े हैं, तब-तब अपने उस गुरु की याद ने उन्हें ऊपर उठाया है। हमारे अपने ज़माने में आजाद हिन्द फौज ने जब वैसे ही एक और महापुरुष के नेतृत्व में असम-बरमा में फैली हुई अंग्रेज़ों-अमरीकियों की बड़ी-बड़ी सेनाओं को मणिपुर की ओर से घेरने का दुःसाहस किया तब उसके नायक शाहनवाज़ ने अपने पंजाबी सैनिकों को गुरु गोविन्दसिंह के पाँच प्यारों की याद दिलाकर उत्साहित किया।

कुरुक्षेत्र के मैदान में गोविन्द ने अर्जुन को ललकारा था—

क्षुद्र हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।···हृदय की दुर्बलता क्षुद्रता को त्याग कर ऊपर उठ।

मैं गुरु गोविन्दसिंह के जीवन पर जितना ध्यान देता हूँ, मुझे यह दिखाई देता है कि वह केवल भय से नहीं, सब प्रकार की हृदय-दुर्बलता से ऊपर उठाता है। हृदय की क्षुद्रता को छोड़कर ऊपर उठ, यही उस जीवन का संदेश है। और क्षुद्रता से ऊपर उठने के लिए सदा वीरता की नहीं, अनेक बार उदारता की और शांत बुद्धि की भी आवश्यकता होती है। आज तो युद्ध भी ठंडे दिमाग से लड़ने की वस्तु बन गया है। आज के युद्ध-यंत्रों को जोश नहीं चलाता, शांत बुद्धि चलाती है। आज हमारा पंजाब वैसी ही एक उलझन में से गुज़र रहा है, जिसमें आपसी किचकिच से ऊपर उठने की आवश्यकता है, जिसे उदारता, सहिष्णुता और शांत-बुद्धि सुलझा सकती है। आज के दिन गुरु गोविन्दसिंह का जीवन-संदेश हमारे लिए प्रिय आदर्श अशोक का संदेश बनकर आता है···सब संप्रदाय वालों की सारवृद्धि हो, उसका मूल है वाणी का संयम कि अपने पंथ का अति आदर और दूसरे पंथ की निन्दा और हलकाई न की जाय। उस प्रसंग में दूसरे पंथ का आदर करना ही चाहिये। वैसा करने वाला अपने पंथ को भी बढ़ाता है, दूसरे पंथों का भी उपकार करता है। इससे उल्टा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने वाला अपने पंथ को भी क्षीण करता है, दूसरे पंथ का भी अपकार करता है। ···समवाय ही अच्छा है कि दूसरे के धर्मों को सुनें और शुश्रूषा करें। और अशोक के शब्दों में यह भी परिक्रम (हिम्मत और मेहनत) से ही होता है और उस प्रकार के परिक्रम से मनुष्य देवताओं से जा मिलते हैं। गुरु गोविन्दसिंह के जीवन का सार भी वही परिक्रम है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सरदार उज्ज्वलसिंह

२. युग-प्रवर्तक

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज महान योद्धा, महान देशभक्त, महा कवि, सर्वस्व दानी तथा मानवता के मुक्तिदाता थे। वे किसी एक सम्प्रदाय, जाति अथवा देश के ही नेता नहीं थे। वे शान्ति के उपासक और सारे संसार के उद्धारक थे। वे एक अद्वितीय व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनकी पारदर्शी दृष्टि सारे ब्रह्मांड की थाह लेती थी। उनके आदर्श सर्व-साधारण के कल्याण के लिए अन्धेरे मार्गों को प्रकाशमान बनाते थे। उनके संदेश की सुवास सारे संसार में फैलानी चाहिए, ताकि उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कुछ लोगों द्वारा जो भ्रान्तियाँ फैलाई जाती हैं, वे दूर हो जाएँ। मेरे विचार में तीन सौवीं वर्षगाँठ मनाने का यही बड़ा उद्देश्य होना चाहिए।

आज हमारी सीमाओं पर खतरे की घनघोर घटाएँ छायी हुई हैं। इसलिए गुरु गोविन्दसिंहजी के जीवन से प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन प्राप्त करने की पहले से भी अधिक जरूरत है। पिछले महीनों की अग्नि-परीक्षा से यह सिद्ध हो गया है कि अब इस महान् प्रेरणा की प्राप्ति के बिना हमारे लिए और कोई चारा नहीं। महाराज जी ने कहा था:—

चूंकार अज हमा हीलते दरगुज़श्त
हलालस्त बुरदन व शमशीर दस्त

आज भी सारे प्रयत्न निष्फल गए। हमारे दुश्मनों ने हमारी शान्त-प्रियता तथा समझौते की इच्छा को हमारी भीरुता और कमज़ोरी ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समझा। हमारे प्रधानमंत्री को महाराज जी के पद चिन्हों पर चलकर घोषणा करनी पड़ी है कि हम शस्त्रों का मुकाबला शस्त्रों से करेंगे।

उनका आदर्श क्या था ?

गुरुजी ने अपना आदर्श 'विचित्र नाटक' में इस प्रकार व्यक्त किया।

जहाँ तहाँ तुम धर्म चलाओ
कुबुध करन ते लोक हटाओ
अथवा
यही काज धरा हम जन्मे
समझ लेहो साधु सब मनमें
धर्म चलावन संत उबारन
दुष्ट समन को मूल उपारन

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके जीवन का उद्देश्य जाति-पांति के मतभेदों को मिटाना, एक-दूसरे से विमुख हुए व्यक्तियों को मिलाना, ऊँच-नीच के भावों को दूर करना, सन्तों की रक्षा करना, धर्म की संस्थापना करना तथा दुष्टों का समूल नाश करना ही था।

जिस समय गुरु महाराज का प्रादुर्भाव हुआ, उस समय इन आदर्शों की प्राप्ति असम्भव प्रतीत होती थी। परन्तु गुरु महाराज ने इनकी प्राप्ति के लिए सर्वस्व न्यौछावर करके 'खालसा' को जन्म देकर ऐक ऐसा चमत्कार कर दिखाया जिसका उदाहरण सारे इतिहास में नहीं मिलता।

वही लोग जो निस्सत्व हो चुके थे, जो हर प्रकार से शिथिल हो गए थे, जो आत्मग्लानी का शिकार हो चुके थे, जिनमें साहस और हौसला नहीं बचा था, जिनकी आँखों का तेज नष्ट हो चुका था, जिनका मस्तक अत्याचारियों और आतताइयों के सामने झुका रहता था, जिनके जीवन में आशा समाप्त हो चुकी थी, जिनके रक्त में स्वाभिमान की अग्नि ठंडी हो चुकी थी, उन्हें ही गुरुजी ने दहाड़ते हुए शेरों में बदल दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्होंने ऐसे शूरवीर पैदा किए, जो दुर्दान्त पठानों के लिए भी आतंक बन गए। वे शूरवीर तेगों से खेले, आरों से चीरे गये, सिर हथेली पर रखकर दुधारे चलाते रहे। उन्होंने हर कष्ट को हँसते-हँसते झेला, प्रत्येक अत्याचारी से टक्कर ली और सभी आक्रान्ताओं का मुँह मोड़ दिया। वे प्रत्येक अग्नि-परीक्षा से कुन्दन बनकर निकले और उन्होंने इतिहास की धारा ही बदल दी।

यह था गुरु महाराज का चमत्कार। परन्तु वे ऐसा किस प्रकार कर पाए ?

खालसा का जन्म

गुरु महाराज ने विगत इतिहास पर दृष्टि डाली, भविष्य की ओर निहारा, वर्तमान की प्रत्येक पक्ष से थाह ली, फिर खालसा का निर्माण करने के लिए खड़ग म्यान से बाहर निकाल मस्तकों की माँग करके उन्हें नवजीवन प्रदान किया, दिव्य वाणी और खड़ग की धार से अमृत तैयार किया और उसे पाँच प्यारों को पिलाया, फिर उन्हीं के हाथों वह अमृत स्वयं पान किया। ये पाँच प्यारे जहाँ भिन्न-भिन्न जातियों में से थे, वहाँ वे भारत के अलग-अलग प्रदेशों के रहने वाले भी थे। एक ही अमृत पात्र से पान किये गये अमृत के घूंट से ऊँच-नीच व जाति-पांति की मन में पड़ी परतें धुल गईं। पाखण्ड, भ्रम, दम्भ, कुबुद्धि आदि बातों का लोप हो गया। गुरु के शिष्यों ने एकाकार होकर उनके आदर्शों की पूर्ति के लिए प्रथम पग उठाया। गुरुजी ने 'खालसा' को जीवन में यह आदर्श अपनाने की शिक्षा दी :

जागत जोति जपे निस बासर
एक बिना मन के न आने
पूरण प्रेम प्रतीत सजे व्रत
गौर मढ़ी अनभूल ना आने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तीरथ दान दया तप संजम
एक बिना नह एक पिछाने
पूरण जोत जगे घट में तब
खालस तोहि निखालस जाने।

एक ईश्वर पर ही भरोसा रखकर, महाराज ने खालसा को अनुपम रूप दिया तथा संत सिपाहियों को पाँच ककारों का परिधान पहनाया।

विचारों में परिवर्तन लाने के लिए उन्होंने शक्ति अर्थात् खड़ग की पूजा करना सिखाया। परन्तु गुरुजी ने उसका कभी सम्मान नहीं किया, जो निराहों और दुर्बलों की ग्रीवाओं पर प्रहार करता है तथा जो सन्तों, भक्तों और दीन-दुखियों का दमन करता है। जिस समय उन्होंने खालसा को खंग धारण करने के लिए आमन्त्रित किया, उस समय उन्होंने खंग के गुण भी स्पष्ट कर दिए

सुख संता करणं दुरमति दरणं
किलबिल हरणं अस सरणं
जै-जै जग तारण सृष्टि उबारण
मन-प्रीति पारण जै तेगं

गुरु महाराज की उक्त वाणी से यह बात स्पष्ट है कि उन्होंने खंग को संतों के उद्धार और बैरियों के संहार का ही साधन बनाया, किसी दुर्बल पर अत्याचार करने का नहीं। उनकी दृष्टि में खंग रक्षा का साधन था, किसी पर आक्रमण करने का नहीं।

वह तो खालसा और सन्त सिपाही को यही समझाते हैं कि वे अपने मन में ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित करें, कायरता, दुर्बलता और कुबुद्धि का नाश करें; हरि के नाम का जाप करें और मन में सदा यही धारणा रखें कि उन्हें सच्चाई और दीन-दुखियों की रक्षा के लिये लड़ना है। यह था वह जीवन-दर्शन जो गुरु महाराज ने जाति में नव-जागृति एवं पुन-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निर्माण लाने के लिए प्रस्तुत किया। उनका दृष्टिकोण किसी एक पंथ या देश की परिधि तक ही सीमित नहीं था। उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की थी :

मानस की जात सबै एकै पहिचानबो ।
देहौरा, मसीत सोई पूजा ऐं निवाज ओई
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाओ है।
अलख अभेख सोई पुरान ऐ कुरान ओई,
एक ही सरप सबै एकै ही बनाउ है ।

इससे यह स्पष्ट है कि वे मानवता के उपासक थे। उनका इस्लाम या किसी अन्य धर्म से वैर-विरोध नहीं था। इस बात को उनके समकालीन ईश्वर-भक्त और सज्जन मुसलमानों ने भली-भाँति समझ लिया था। यही कारण है कि पीर बुद्धू शाह जैसे व्यक्ति उनके लिए भंगाणी के युद्ध में दो पुत्रों का बलिदान देकर अल्लाह की दरगाह में शुकराना नमाज़ पढ़ते थे।

उनका व्यवहार तो वास्तव में कई शताब्दियों आगे का था। वह युग राजाओं, महाराजाओं, जागीरदारों और शहनशाहों का युग था, लोगों की स्थिति कीड़ों, भेड़-बकरियों जैसी समझी जाती थी। तत्कालीन शासक जनता के बारे में यही विचार रखते थे कि लोग हमें सलाम करने के लिए ही हैं। इनका काम हमारे लिए अन्न-धन पैदा करना है और हमारा काम इनपर शासन करना है। डाक्टर गोकलचन्द्र नारंग ने अपनी पुस्तक 'ट्रांसफारमेशन ऑफ सिखिज़म' में इस वास्तविकता की इन शब्दों में पुष्टि की है : "उस समय हिन्दू जनता दिल्ली के बादशाह को ईश्वर समझती थी"।

गुरु गोविन्दसिंहजी महाराज ही प्रथम महान् क्रान्तिकारी थे, जिन्होंने लोगों की शक्ति को पहचाना, उनको सम्मान दिया, उन्हें शक्ति का स्रोत समझा और उन पर विश्वास किया। कितना भरोसा था उन्हें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विशाल 'संगतों पर। आपने कहा है :

जुद्ध जिते इन ही के प्रसादि,
इन ही के प्रसादि सुदान करे।
इन ही की कृपा के सजे हम हैं,
नहीं मो सो गरीब करोर परे।

अपने-आपको जनता से कितना अभिन्न समझते थे गुरुजी । जिस समय चारों साहबजादे शहीद हो गए, तो आपने अकालपुरुष को धन्यवाद दिया। माता के आँसू भरे नेत्रों को देखकर यह कहकर उसे धैर्य बंधाया :

चार मुए तो क्या हुआ,
जीवित कई हजार ।

यह थी वह दिव्य ज्योति जिसे आपने जन-जन के हृदय में प्रज्वलित किया और जिसे हजारों अँधड़ भी बुझा न सके ।

यह था वह एक लोकतंत्रीय दृष्टिकोण जिसे गुरुजी ने अपना लिया था । इसलिए सिख लहर (आन्दोलन) एक जन लहर ...उफनते सागर के प्रवाह की तरह ठाठें मारती हुई आगे बढ़ी और सभी दुर्बलताओं को बहा ले गई ।

गुरु महाराज ने अपनी तीन पीढ़ियाँ कौम पर न्योछावर कर दीं। पिता ने बलिदान दिया। दो लाल दीवारों में चुने गए, दो पुत्रों ने युद्ध में सूरमाओं की तरह वीरगति प्राप्त की। दशमेश ने गुरु-गद्दी की समाप्ति करके श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को गुरु बनाया। पाँच प्यारों को पाँच तख्तों के सर्वप्रमुख अधिकार प्रदान किए, क्योंकि गुरु महाराज के ब्रह्मलीन होने से पूर्व यह विश्वास हो गया था कि सिख लहर जनता की लहर बन चुकी है, भारत की धरती का कण-कण इसकी प्रभा से देदीप्यमान हो रहा है और अब इसे कोई मिटा नहीं सकता, पद-दलित नहीं कर सकता, बुझा नहीं सकता ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यही कारण है कि यह लहर लोगों की शक्ति से बढ़ती गई। इसमें भाग लेने वालों को दुष्टों, आततायियों ने अकथ यातनाएँ दीं, चरखियों पर चढ़ाया, अंग-अंग काटा, देगों में उबाला, उनके बच्चों को नेजों से बींधा, परन्तु यह लहर दबायी न जा सकी। उल्टे यह बिफरते सागर की तरह अधिक से अधिक सबल और सशक्त होकर बढ़ती गई।

परन्तु इतना कुछ कर देने के बाद भी उन्होंने अपने दिल में मलाल नहीं आने दिया। जो सिख विपत्ति से घबराकर साथ छोड़ गए, उन्हें भी बुरा नहीं कहा, उनसे कटु वचन नहीं कहे, आपसी प्रेम का सूत्र नहीं तोड़ा, इसके विपरीत उनके द्वारा दिये गए 'विदा-पत्र' को हृदय से लगाए रखा। जब वे वापस आए तो उन्होंने मुक्तसर के युद्ध में अपने प्राण न्योछावर किए। उनमें से महासिंह नामक एक व्यक्ति ने गुरुजी से सुबकते हुए 'विदा-पत्र' को फाड़ डालने की प्रार्थना की। तब गुरुजी के हृदय में सुप्त प्रेम-भावनाएँ नेत्रों के माध्यम से छलक पड़ीं। कौन है ऐसा महापुरुष जो इस प्रकार सान्त्वना दे सकता था, 'विदा-पत्र' फाड़कर टूटे हुए सूत्र को जोड़ सकता था? और फिर उन चालीस व्यक्तियों को ही कौन 'मुक्त' की पदवी प्रदान कर सकता था?

गुरु महाराज ने जहाँ मदमस्त हाथियों से जूझने वाले विचित्र योद्धा पैदा किए, वहाँ उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में भी वे अनुपम उपलब्धियाँ प्राप्त कीं, जिनका अन्य उदाहरण नहीं मिलता। यह देखकर अचम्भा होता है कि उनकी ४२ वर्ष की सारी आयु अत्याचार और अत्याचारियों से युद्ध करने में बीती, परन्तु फिर भी उन्होंने साहित्य की अनुपम सेवा की। उनके दरबार में लगभग ५२ कवि हर समय उपस्थित रहते थे। वे नित नई कृतियाँ लिखते, वारों की रचना करते, प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद करते और गुरुजी श्रेष्ठ रचनाओं पर उदारतापूवक पुरस्कार देते। गुरुजी ब्रज, संस्कृत और फारसी भाषाओं के बड़े पंडित थे, साथ ही एक प्रतिभा-सम्पन्न कवि भी। उन्होंने प्राचीन भारतीय साहित्य का अवगाहन और मंथन किया। 'चंडी दी वार', 'कृष्णा-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वतार' 'रामावतार', 'अकाल अस्तुत' और 'जाप साहब' जैसी अमर रचनाओं का सृजन किया। वह वीर रस के ही कवि नहीं थे। उन्होंने शृंगार रस की मनोहारी रचनाओं का भी सृजन किया। वे जीवन को हर पक्ष से देखते थे। 'अंजन माही निरंजन रहिए' यही आदर्श उनके सामने रहता था।

यह एक बड़ी दुखद बात है कि उनकी प्रेरणा से रचा गया वह बहुमूल्य विशाल साहित्य या तो सरसा नदी में बह गया या फिर तत्कालीन उथल-पुथल की भेंट चढ़ गया। आज आवश्यकता इस बात की है कि उस साहित्य-भंडार को ढूंढा जाए। मैं तो यह भी कहूँगा कि जिस प्रकार गुरु महाराज ने फारसी, ब्रज तथा अरबी के शब्दों का सर्वत्र प्रयोग किया है, उसी प्रकार हमारे अन्वेषक साहित्यकार गुरुजी के पदचिह्नों पर चलें। यदि वे ऐसा करेंगे, तो हमारे बहुत से भाषायी विवाद अपने आप हल हो जाएँगे।

आज राष्ट्र को गुरुदेव की वह भावना अपनाने की आवश्यकता है जो कभी हार नहीं मानती। जब पुत्र शहीद हो गए और सब कुछ देश की भेंट हो गया, तो साहिब गुरु गोविन्दसिंह जी ने औरंगजेब के पत्र के उत्तर में 'जफरनामा' लिखा, जिसमें आपने इस प्रकार अपने दृढ़ संकल्प का परिचय दिया :—

चिहा शुद कि चू बच्चगाँ कुशतः चार
कि बाकी बिमांदअस्त पेजीदाः मार

महाराज के जीवन के बारे में खोज करने वालों को चाहिए कि वे उस वार्तालाप को लोगों के सामने लाएँ, जो श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज और बंदा बहादुर के मध्य हुआ। इसके परिणाम स्वरूप दुनिया से विरक्त हुआ बन्दा वैरागी बाबा बंदासिंह बहादुर बनकर सारे उत्तर भारत पर अँधेरी की तरह छा गया और दुष्टों की सेनाओं पर बिजली की तरह कड़का।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रसिद्ध विद्वान श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने एक लेख में लिखा है कि 'यदि महाराज के बंदा बहादुर को कहे गए शब्द संभाले गए होते, तो वह एक दूसरी गीता होती, मुझे भरोसा है कि हमारे अन्वेषक विद्वान इस ओर जरूर ध्यान देंगे और वह प्रेरणात्मक सदेश लोगों के सम्मुख लायेंगे ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

32851

डॉ० महीपसिंह

३. जीवन पर एक दृष्टि

गुरु गोविन्दसिंह को मात्र ४२ वर्ष की आयु प्राप्त हुई थी। उनके द्वारा किये हुए कार्यों तथा उनकी आयु के इन स्वल्प वर्षों में ठीक से संगति बैठा पाना बहुत दुष्कर कार्य है। फिर जीवन-कार्य भी ऐसे जो विविधता को इस रूप में अपने अन्दर समेट लेते हैं कि कहीं-कहीं उनमें विचित्र-सा विरोधाभास नजर आने लगता है। एक आध्यात्मिक पुरुष और सांसारिक व्यक्तित्व, एक योद्धा और एक ऐसी गद्दी के स्वामी जिसके पीछे नौ पीढ़ियों की उपार्जित प्रतिष्ठा, वैभव एवं असंख्य अनुगामियों का समूह, ये सब कुछ कहीं एक-दूसरे के विरोधी दृष्टिगत होते हैं। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह के व्यक्तित्व में वे सभी बातें कुछ इस तरह समा जाती हैं कि यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उनके व्यक्तित्व का कौन-सा रूप दूसरे की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

गुरु गोविन्दसिंह के सर्वथा अद्‌भुत व्यक्तित्व को समझने में आज एक कठिनाई भी है। गुरु गोविन्दसिंह ने जिस पंथ का निर्माण किया था, वह अपने विकास क्रम से निकलता हुआ आज पूरी तरह एक 'धर्म पन्थ' बन चुका है, तथा अन्य धर्मों के समकक्ष अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है। गुरु गोविन्दसिंह ने जिस 'पंथ' का निर्माण किया था, वह 'धर्म' की रक्षा के लिए था। वह धर्म जिसके लिए गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि जब-जब उसकी हानि होती है, मैं अवतार ग्रहण करता हूँ। इसी बात को गुरु गोविन्दसिंह ने अपने शब्दों में कहा कि मेरा जन्म 'धर्म चलावन संत उबारन' के लिए हुआ है। 'धर्म' के इस कार्य में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संतों की रक्षा और दुष्टों का नाश बहुत महत्त्वपूर्ण है, कदाचित् सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। और, इस दृष्टि से किए हुए सशस्त्र संघर्ष को ही 'धर्मयुद्ध' कहकर पुकारा गया था।

परन्तु हम आज जहाँ खड़े हैं, वहाँ 'धर्म' अपने बहुत से अर्थ परिधान छोड़ता हुआ मात्र 'मज़हब' के अर्थ में सीमित हो गया है। पहले 'धर्म' शब्द अपने-आपमें पर्याप्त था। अब यह तब तक अधूरा लगता है, जब तक इसके साथ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या सिख, जैन, बौद्ध आदि शब्द और न जोड़े जाएँ। इस प्रकार आज की स्थिति में यदि कोई व्यक्ति यह घोषणा करे कि मेरा जन्म 'धर्म' की रक्षा के लिए हुआ है, तो स्वाभाविक रूप में वह 'धर्म' कोई विशिष्ट धर्म होगा और वहाँ संतों की रक्षा और दुष्टों का दमन कार्य इतना आत्मपरक हो जाएगा कि वहाँ अपने धर्ममत वाले की (दुष्टों की भी) रक्षा और अन्य दूसरे धर्ममत वाले का (संतों का भी) दमन अनिवार्य-सा हो जाएगा। आखिर देश-विभाजन के समय इस देश में क्या हुआ था?

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'धर्म' और 'मज़हब' के इस अन्तर और संघर्ष की बड़ी वैज्ञानिक व्याख्या की है। (कबीर पृष्ठ १७० से १७४) उनके अनुसार भारत में धर्म-साधना वैयक्तित रही है। प्रत्येक व्यक्ति को अलग से धर्मोपासना का अधिकार है। श्रेष्ठता की निशानी किसी धर्ममत को मानना या देव विशेष की पूजा करना नहीं, बल्कि आचार शुद्धि और चारित्र्य है। 'मज़हब' एक संघटित' धर्ममत है। बहुत से लोग एक ही देवता को मानते हैं, एक ही आचार का पालन करते हैं, और किसी नस्ल, कबीले या जाति के व्यक्ति को जब एक बार अपने संघटित समूह में मिला लेते हैं, तो उसकी सारी विशेषताएँ दूर कर उसी विशेष मतवाद को स्वीकार कराते हैं। यहाँ धर्म-साधना व्यक्तिगत नहीं, समूह-गत होती है। 'धर्म' का केन्द्र बिन्दु 'चारित्र्य' होता है, किन्तु 'धर्ममत' का केन्द्र बिन्दु अपने मत का अनुगमन होता है।

मुसलमानों के आने के पूर्व इस देश में 'धर्म' की कल्पना प्रमुख थी,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'धर्ममत' की कल्पना गौण। परन्तु धीरे-धीरे यहाँ भी इस्लाम और ईसाई मज़हबों के अनुगमन पर धर्ममत की कल्पना प्रधान होती गयी और 'धर्म' उसी में अन्तर्भुक्त होता गया। 'खालसा पंथ' का 'सिख धर्म' के रूप में विकसित हो जाना इसी प्रक्रिया का परिणाम है।

ऊपर गुरु गोविन्दसिंह के व्यक्तित्व को समझने में एक कठिनाई की ओर संकेत किया गया है। अब उन्हें 'धर्म रक्षक' की अपेक्षा एक 'धर्ममत के गुरु' के रूप में पहचानने का आग्रह अधिक है। और यह आग्रह मुख्य रूप से उनके द्वारा है, जो उस धर्ममत के अनुयायी हैं।

धर्ममत के अनुयायी अपने गुरु या प्रवर्त्तक से अपनी सामयिक मतवादी आवश्यकताओं एवं आदर्शों के अनुसार कुछ विशेष गुणों की अपेक्षा करते हैं, दूसरे शब्दों में उसपर कुछ विशेष गुणों एवं प्रवृत्तियों का आरोप करने लगते हैं। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक रूप से उस महापुरुष के जीवन-कार्यों एवं व्यक्तित्व का विश्लेषण एक विशिष्ट मतवादी दृष्टिकोण की संपुष्टि के लिए ही किया जाता है।

गुरु गोविन्दसिंहजी के जीवन का अध्ययन करते समय विभिन्न प्रकार के एकांगी दृष्टिकोणों का परिचय लेखक को स्थान-स्थान पर मिला है।

राष्ट्र-निर्माता

गुरु गोविन्दसिंह के जीवन पर दृष्टि जाते ही हमें उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य एक पीड़ित, दलित और आत्मविस्मृत जाति को एक अदम्य आत्मविश्वास से पूरित शक्ति में परिवर्तित कर देने का लगता है। भारत का तत्कालीन हिन्दू समाज असंख्य टुकड़ों में बंटा हुआ था जिसका उच्चवर्ग या तो धार्मिक पाखंडों और बाह्याचारों में निमग्न या अपने मिथ्या गौरव और जातीय अहंकार को लेकर मुगल-शक्ति की सेवा में दत्तचित्त था। उस समाज के शताब्दियों से सर्वथा उपेक्षित वर्ग को अपना सहयोगी बनाकर गुरु गोविन्दसिंह ने उसमें असीम शक्ति एवं आत्मविश्वास का संचार कर दिया। डॉ० नारंग के शब्दों में वे मनुष्य जिन्होंने कभी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कृपाण को छुआ तक नहीं था और न बन्दूक को ही अपने कंधे पर रखा था, सशक्त वीर बन गए। उन्होंने, धीवरों, धोबियों, चमारों को भी ऐसा सेनापति बना दिया जिनके आतंक से बड़े से बड़े राजा भी भयभीत होने लगे। (ट्रांस्फारमेशन ऑफ सिखिज़्म : पृष्ठ १३८)

लोगों में अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए जिस शक्ति-संचार की आवश्यकता थी, उसके लिए गुरु गोविन्दसिंह ने अपने पूर्ववर्ती गुरुओं की भक्ति-पद्धति में वीर रूपकों का समावेश किया। सम्पूर्ण भक्ति-काव्य में ईश्वर के सृष्टि का निर्माण करने एवं पोषण करने के गुणों के वर्णन का प्राधान्य है। परन्तु ईश्वर का एक और रूप भी है—विनाश करने वाला रूप। गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी रचनाओं में ईश्वर के निर्माण एवं पोषण गुणों के साथ ही उसके विनाशकारी स्वरूप का भी बड़े मनोयोग से चित्रण किया। अनेक स्थानों पर वे कहते हैं कि जिस 'काल पुरुष' ने बड़े-बड़े देवताओं, दैत्यों, सम्राटों को क्षण-भर में समाप्त कर दिया, उसके सम्मुख कोई टिक सके, ऐसी किसमें शक्ति है ? कदाचित् यह कह कर उन्होंने अपने युग की उस शक्ति-मदान्ध मुगल सत्ता की ओर संकेत किया जिसकी विशाल शक्ति के सम्मुख उस 'काल पुरुष' का भरोसा लेकर ही वे खड़े हुए थे :—

या कलि में सभ काल कृपान के,
भारी भुजान को भारी भरोसो।

(दशम ग्रन्थ : पृष्ठ ४५)

गुरु गोविन्दसिंह के सम्पूर्ण साहित्य में परमात्मा के अगणित नामों का प्रयोग हुआ है, परन्तु इसमें 'काल' नाम उन्हें सर्वाधिक प्रिय है। मध्यकालीन भक्तों की रचनाओं में ईश्वर के लिए विविध प्रकार के नाम प्रयुक्त किये गये हैं, किन्तु यह नाम कहीं दिखाई नहीं देता। पौराणिक साहित्य में अवश्य इस नाम को प्रतिष्ठा प्राप्त है। विष्णु पुराण में लिखा है—हे द्विज ! परब्रह्म का प्रथम रूप पुरुष है, अव्यक्त (प्रकृति) और व्यक्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(महदादि) उसके अन्य रूप हैं तथा (सबको शोभित करने वाला होने से) काल उसका पर रूप है।

परस्य ब्रह्मणो रूपं पुरुषः प्रथमं द्विज ।
व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथा परम् ।१५ ।।

'काल' का परिचय विष्णु पुराण में इन शब्दों में दिया गया है।

हे विप्र ! विष्णु के परम (उपाधिरहित) स्वरूप से प्रधान और पुरुष ये दो रूप हुए; उसी (विष्णु) के जिस अन्य रूप के द्वारा वे दोनों (सृष्टि और प्रलयकाल में) सयुक्त और वियुक्त होते हैं, उस रूपान्तर का ही नाम 'काल' है।

विष्णोः स्वरूपात्परतो हि ते द्वे रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र ।
तस्येव तेऽन्येन धृते वियुक्ते रूपान्तरं तद्द्विज कालसंज्ञम् ।।

अपने साहित्य में गुरु गोविन्दसिंह ने ईश्वर के उस अप्रचलित नाम का प्रयोग विशेष उद्देश्य से प्रेरित होकर किया। उन्होंने बड़े विश्वास-पूर्वक कहा कि जिस 'काल' ने शुंभ, निशुंभ, धूमलोचन, चंड, मुंड, महिषासुर, चामर, रक्तबीज आदि राक्षसों को क्षण-भर में नष्ट कर दिया, ऐसे स्वामी का सहारा पाकर भला मुझे किसकी परवाह है।

सुंभ निसुंभ से कोट निसाचर जाहि छिनेक बिखे हन डारे ।
धूमर लोचन चंड अउ मुंड से माहष से पल बीच निवारे ।।
चामर से रन चिच्छुर से रकतिछण से झट दे झझकारे ।
ऐसो सु साहिबु पाइ कहा परवाह रही इह दास तिहारे ।
(दशम ग्रन्थ : पृष्ठ ४५)

'काल' को उन्होंने अकाल, सर्वकाल, महाकाल, श्रीकाल आदि अनेक नामों से पुकारा है। काल के रूप में उन्होंने ईश्वर के वीररूप और उग्ररूप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की प्रतिष्ठा की। डमरू बजाते हुए, फणिधर के समान फुफकारते, बाघ के समान दहाड़ते, दामिनी के समान हँसते, रक्त पीते हुए, अष्टायुद्ध धारण किये, सिंह पर सवार, अपनी दाढ़ में सभी को चबाते हुए भयावह रूप का चित्रण उनके साहित्य में अनेक स्थानों पर हुआ है। उदाहरणस्वरूप उनकी रचना 'अकाल स्तुति' में काल का यह रूप द्रष्टव्य है :—

डांवरू डवंकै बबर बवंकै भुजा फरंकै तेज बरं।
लंकुड़िया फाधै आयुध बाँधै सैन विमर्दन काल असुरं॥
अस्टायुध चमके भूषण दमके अति सित झमके फुंक फणं।
जै जै होसी महिषासुर मर्दन रम्मक पर्दन दैत जिणं॥
(दशम ग्रन्थ : पृष्ठ ३१)

श्री गुरु गोविन्दसिंह की आत्मकथा 'विचित्र नाटक' से काल के इस रौद्ररूप का उल्लेख मात्र उदाहरण के लिए प्रस्तुत है, अन्यथा ऐसे रूप-चित्रों का दशम ग्रन्थ में कोई अभाव नहीं है।

करं बाम चापियं कृपाणं करालं।
महातेज तेजं बिराजै बिसालं॥
महादाढ़ दाढ़ं सु सोहं अपारं।
जिनै चरवीयं जीव जग्यं हजारं॥
डमा डम्म डमरू सिता सेत छत्रं।
हहा हूम हासं झमा झम्म अत्रं॥
महाघोर सबदं बजै संख ऐसे।
प्रलैकाल के काल की ज्वाल जैसे॥
(दशम ग्रन्थ : पृ० ४०)

गुरु गोविन्दसिंह के सम्मुख 'काल' के साकार रूप की कल्पना भी अस्त्र-शस्त्र युक्त है। जनता के सम्मुख ईश्वर का वंशी बजाने, गौएँ चराने, माखन चुराने का रूप ही प्रमुख था। उन्होंने उसके सम्मुख खड्गपाणि,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कृपाणपाणि, बाणपाणि, दंडधारी, चक्रपाणि, असिपाणि, असिध्वज, खड्गकेतु, धनुष बाणधारी आदि अनेक वीररूप रखे।

ईश्वर के वीररूप और अस्त्र-शस्त्रों के प्रति उनकी इतनी तन्मयता थी कि उनकी दृष्टि में शस्त्र और शस्त्रधारी में कोई अन्तर ही न था। स्वयं 'खड्ग' ही 'खड्गपाणि' का प्रतीक बन गया। वीर कार्यों के प्रसंग में शस्त्र-पूजा इस देश की प्राचीन परम्परा रही है। गुरु गोविन्दसिंह ने अपने व्यक्तित्व और साहित्य द्वारा इस परम्परा को और मुखर किया। 'विचित्र नाटक' ग्रन्थ का प्रारंभ ही वे खड्ग की स्तुति से करते हैं :—

नमस्कार श्री खग्ड कउ करौं सु हितु चितु लाइ।
पूरन करौ ग्रन्थ इह, तुम मुहि करहु सहाई॥
(दशम ग्रन्थ : पृ० ३९)

उनकी दृष्टि में शस्त्र भी शस्त्रधारी 'काल' के समान एक रूप है, निर्विकार है :—

नमो खड्ग खंडं कृपाणं कटारं।
सदा एक रूपं सदा निरविकारं॥
(दशम ग्रन्थ : पृष्ठ ४५)

और, वे घोषित करते हैं कि संतों के सुख का, दुष्टों के दलन का, संसार की स्थिति का, सृष्टि के उद्धार का और मेरी प्रतिज्ञा के पालन का एकमात्र साधन 'तेग' ही है, उसी की जय हो।

राष्ट्रों का निर्माण मात्र युद्धभूमि में नहीं होता। उसके लिए जनता की मनःस्थिति में परिवर्तन आवश्यक होता है। गुरु गोविन्दसिंह ने इस दृष्टि से सर्वांगीण प्रयत्न किये। सामयिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए सैनिक तैयार किये और युगों के बैठे हुए मानसिक दौर्बल्य को भगाने के लिए साहित्य का आश्रय लिया।

गुरु गोविन्दसिंह के सम्पूर्ण काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् हम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि वे मुख्य रूप से वीर-रस से कवि थे, परन्तु आश्चर्य की बात है कि अभी तक हिन्दी में वीर काव्य पर जितने भी आलोच्य ग्रन्थ निकले हैं, उनमें गुरु गोविन्दसिंह का कहीं उल्लेख नहीं किया गया है।

गुरु गोविन्दसिंह के काव्य का वैशिष्ट्य

परन्तु गुरु गोविन्दसिंह का महत्त्व सभी आश्रय-प्राप्त कवियों से सर्वथा पृथक् है। हिन्दी में वीर-रस के वे एकमात्र कवि हैं जिनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि में कोई सांसारिक आकांक्षा नहीं है। जिन्हें किसी आश्रय-दाता को प्रसन्न नहीं करना है, जिन्हें अपनी कवित्व शक्ति का प्रयोग जीवकोपार्जन के लिए नहीं करना है। साहित्य सृजन के लिए उनकी एकमात्र 'वासना' 'धर्मयुद्ध का चाव' है। वे उन कवियों में नहीं हैं जो सुरक्षित स्थानों में बैठकर वीररस पूर्ण कृतियों की रचना दूसरों को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए करते हैं। गुरु गोविन्दसिंह अपनी कृतियों से दूसरों को प्रेरित करते हैं और उनसे अधिक स्वयं प्रेरित होते हैं।

वीर भावों से युक्त उद्गारों की अभिव्यक्ति गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं के संग्रह 'दशम ग्रन्थ' में अनेक स्थानों पर प्राप्त होती है। 'कृष्णावतार' नामक रचना में एक स्थान पर वे कहते हैं :

अब रीझ के देहु वहै हम कउ जोउ हौं बिनती कर जोर करौं।
जब आउ की अउध निदान बनै अति ही रन में तब जूझ मरौं॥
(पृष्ठ ५७०)

इसी रचना में उनकी एक अन्य भावाभिव्यक्ति इस प्रकार है :

हे रवि, हे ससि, हे करुनानिधि, मेरी अबै बिनती सुन लीजै।
अउर न मांगत हौं तुमसे कछु चाहत हौं चित में सोई कीजै॥
सस्त्रन सिउं अति ही रण भीतर जूझ मरौं कहि साच पतीजै।
संत सहाइ सदा जग माहि कृपा करि स्याम इहै वरु दीजै॥
(पृष्ठ ४६५)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपनी एक अन्य रचना 'चंडी चरित्र' (प्रथम) में आयु की अवधि समाप्त होने पर वीरगति प्राप्त करने की इच्छा उन्होंने इस प्रकार व्यक्त की है :

देह शिवा बर मोहि इहै सुभ करमन ते कबहूं न टरौं।
न डरौं अरि सों जब जाई लरौं निसचै करि अपनी जीत करौं।।
अरु सिखहौं अपने ही मन को इह लालच ही गुन तउ उचरौं।
जब आउ की अवध निदान बनै अति ही रन में तब जूझ मरौं।।

गुरु गोविन्दसिंह की रचनाओं में इस प्रकार की उदात्त भावना का प्रकटीकरण स्थान-स्थान पर हुआ है। यही भावना अन्य काव्यगुणों से संयुक्त होकर उन्हें हिन्दी वीरकाव्य के उच्चतम स्थान पर प्रतिष्ठित करती है। गुरु गोविन्दसिंह हिन्दी के एकमात्र ऐसे कवि हैं, जिनका युद्ध-चित्रण स्वानुभूतिपूर्ण है।

समन्वय प्रयासों की असफलता

ऐसे अपूर्व संकटकाल में, जब सम्पूर्ण देश में दमन का भीषण चक्र तीव्र झंझावात की तरह चल रहा था, देश की जन-शक्ति को सम्पूर्ण आलस्य और प्रमाद त्यागकर जागना पड़ा और पर्वत की दृढ़ता लेकर उसके मध्य खड़ा होना पड़ा। समन्वय प्रयास असफल हो चुके थे। बाबर और गुरु नानक, अकबर और गुरु रामदास के सम्बन्धों को तिलांजलि दे दी गई थी और सामने खड़े थे औरंगजेब और गुरु गोविन्दसिंह। शक्ति का प्रतिरोध शक्ति से किया जाना था। 'अल्ला हो अकबर' के नारे का उत्तर 'सति श्रीअकाल' के जयघोष से दिया जाना था। इस प्रकार की परिस्थिति में गुरु गोविन्दसिंह ने अपने संगठन को उस प्रदेश में खड़ा किया जो मुगल शासन के जबड़ों के मध्य जकड़ा हुआ था। गुरु गोविन्दसिंह ने सेना एकत्रकर, पास-पड़ौस के राज्यों पर आक्रमणकर एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का कभी प्रयास नहीं किया। यह करना उनके लिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कठिन नहीं था। आस-पास के पहाड़ी राजाओं को वे कितनी ही बार पराजित कर चुके थे। परन्तु वे जानते थे कि राज्यों का बनना-बिगड़ना क्षणिक और अस्थायी महत्त्व की बात है। जनता की मनोवृत्ति में आमूल परिवर्तन लाना ही वास्तविक महत्त्व की बात है, ऐसा परिवर्तन जो युगों-युगों से उनमें बैठी आत्मविश्वासहीनता और हीन भावना को दूर करके उनमें 'सवा लाख से अकेले लड़ने' का अदम्य उत्साह भर दे। गुरु गोविन्दसिंह ने यह कार्य किया। गुरु गोविन्दसिंह ने केवल युद्ध ही नहीं किये, युद्ध के सम्पूर्ण दर्शन का भी विकास किया।

हिन्दू शक्तियों का समन्वय

इस ऐतिहासिक संघर्ष की तैयारी के लिए गुरु गोविन्दसिंह ने सभी हिन्दू शक्तियों का समन्वय किया। शैवों, शाक्तों, वैष्णवों द्वारा समादृत साहित्य का श्रद्धापूर्वक भाषानुवाद करना तथा करवाना इस समन्वय प्रयास का सबसे बड़ा प्रमाण है। गुरु गोविन्दसिंह जैसी बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्तित्व हमें तत्कालीन भारतीय इतिहास में दूसरा दिखाई नहीं देता। डॉ० नगेन्द्र का यह मत उचित ज्ञात नहीं होता कि उस युग में उत्तरी भारत ने औरंगजेब को छोड़कर कोई भी प्रथम श्रेणी का व्यक्तित्व नहीं उत्पन्न किया। औरंगजेब के व्यक्तित्व को प्रथम श्रेणी का व्यक्तित्व कहना इतिहास का उपहास करना है। जिस व्यक्ति ने अपनी अदूरदर्शिता एवं धार्मिक उन्माद में आकर पांच पीढ़ियों से जमे सुदृढ़ साम्राज्य के लिए पग-पग पर शत्रु उत्पन्न कर लिए और अन्त में मुगल साम्राज्य के विनाश का कारण बना, जिसने न जीवन-भर किसी पर विश्वास किया और न किसी को भली प्रकार अपने विश्वास में ले सका, जिसके कुंठित व्यक्तित्व का निर्माण पिता (शाहजहाँ), भाई (दारा और मुराद) तथा पुत्र (मुहम्मद अकबर) के विनाश पर हुआ, उसके व्यक्तित्व को प्रथम श्रेणी का व्यक्तित्व कैसे कहा जा सकता है? स्वयं डॉ० नगेन्द्र ने उसी पृष्ठ पर उसके व्यक्तित्व की अपूर्णता की ओर भी संकेत किया है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'स्वयं औरंगजेब भी सफल राजनीतिज्ञ नहीं था। अकबर और उसके सचिव भगवानदास, टोडरमल आदि की राजनीतिक योग्यता की इस युग में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।'

महामानव रूप

गुरु गोविन्दसिंह के योद्धा और राष्ट्रनिर्माता रूप की चर्चा बहुधा हुई हैं। परन्तु उससे भी ऊपर उठा हुआ उनका एक और रूप है, जिसका परिचय उनके जीवन-कार्यों और उनके द्वारा रचित साहित्य के माध्यम से प्राप्त होता है। उन्होंने मानव जीवन में व्याप्त अनेक विषमताओं का खंडन ही नहीं किया, वरन् नये मूल्यों की प्रतिष्ठा भी की। जहां वे युद्धरत सैनिक हैं, वहाँ वे अपने पक्ष की विजय और परपक्ष के पराजय की कामना करते हैं। परन्तु उनके महामानव रूप से निखरा उनका व्यक्तित्व बड़ा महिमाशाली है। यहाँ वे शत्रु-मित्र, स्वधर्मी-परधर्मी और स्वदेशी-परदेशी किसी भी भेद को स्वीकार नहीं करते। मानवमात्र की समता और सभी में एक ज्योति की प्रतिष्ठा में उनकी दृढ़ आस्था है।

इतिहास का एक अनोखा व्यक्ति

वास्तव में गुरु गोविन्दसिंह का यह द्विमुखी व्यक्तित्व उन्हें इतिहास का एक अनोखा व्यक्ति बना देता है। उनकी भक्ति-भावना में उनके ये दोनों रूप हमें स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। वे एक भक्त थे। भक्त का संसार में कोई शत्रु-मित्र नहीं होता। कम-से-कम शत्रु तो नहीं होता, परन्तु गुरु गोविन्दसिंह तो तत्कालीन अन्यायी शासन के विरुद्ध उभरते हुए जनान्दोलन के नेता भी थे, और नेता के मित्र भी होते हैं और शत्रु भी। उनके मित्र कम थे, असंगठित थे, दुर्बल थे और पददलित थे। दूसरी ओर शत्रु शक्तिशाली थे और पीड़क थे। ऐसी स्थिति में भगवान की सहायता की अपेक्षा होती है। उसी के भरोसे आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है और बढ़ता है। ईश्वर का एक पक्ष का सहायक होना और दूसरे पक्ष का संहारक

Sri Pratap Singh Library SRINAGAR

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होना हमारे पौराणिक साहित्य में स्वीकृत है। सभी अवतार देवताओं के पक्ष में तथा असुरों के विपक्ष में युद्ध करते रहे हैं। गुरु गोविन्दसिंह ने इस सिद्धान्त को पौराणिक कथाओं की सीमा से बाहर निकलाकर समसामयिक जीवन के यथार्थ पर घटित किया। यद्यपि तुलसीदास के राम और सूरदास के कृष्ण भी असाधु शत्रुओं के नाशक और साधु मित्रों के पालक हैं, परन्तु तुलसी या सूर ने अपने व्यक्तिगत शत्रुओं के विनाश की प्रार्थना अपने इष्टदेवों से कभी नहीं की। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह ने अपने इष्टदेव 'काल' से अपने शत्रुओं के विनाश और अपने परिवार, सेवकों, सिखों के संरक्षण की प्रार्थना की है।

इसका कारण स्पष्ट है। सूर, तुलसी, कबीर नानक सभी भक्त हैं, किन्तु गुरु गोविन्दसिंह योद्धा भक्त हैं। योद्धा, युद्धभूमि में जाते समय सदैव अपने पक्ष की विजय और विपक्ष की पराजय की कामना अपने इष्टदेव से करते ही आये हैं। इसीलिये उनकी कुछ रचनाओं में ऐसी भावनाओं का परिचय मिलता है, किन्तु इससे पृथक् उनका वह रूप है, जो उन्हें महामानव के रूप में एक विशिष्ट धरातल पर प्रतिष्ठित करता है।

गुरु गोविन्दसिंह ने मनुष्य और मनुष्य में कोई भेद कभी उसकी जाति, धर्म, रंग या परिवेश के कारण स्वीकार नहीं किया। और न ही उन्होंने ईश्वर के विभिन्न नामों, धर्म स्थानों और पूजा-पद्धतियों में कोई अन्तर स्वीकार किया है। भगवान के भक्त उसे अनेक नामों से पुकारते हैं, फिर भी वे अनेक नहीं हैं। मानव-जाति ईश्वर का अनेक नामों से स्मरण करती है, उसे अनेक रूपों में देखती है और विभिन्न स्थानों में उसके अस्तित्व की कल्पना करती है, परन्तु इससे उसकी मानवीय एकता नष्ट नहीं होती; क्योंकि यह विभिन्नता वातावरण जनित है।[1]

१. 'गुरु गोविन्दसिंह : युग-व्यक्तित्व' से साभार।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

डॉ० हरनाथ शुक्ल

४. संस्कृति के संरक्षक

भारतीय इतिहास में जब-जब सांस्कृतिक संक्रमण काल आया है, तब-तब ऐसे महापुरुषों ने अवतार लिया है, जिन्होंने अपनी विलक्षण समन्वयात्मक प्रतिभा द्वारा राष्ट्रीय चेतना को नई शक्ति प्रदान कर भारतीय संस्कृति को सर्वजन प्रिय रूप दे उसे कुंठाओं से मुक्ति दिला प्रगतिशील बनाया है। इसी मूलभूत विशेषता के कारण यह संस्कृति न केवल जीवित ही है, अपितु युगानुकूल परिवर्तनों, अपेक्षाओं को स्वीकार करते हुए समग्र मानव-मात्र को पूर्ण बनाने के लिए आज भी क्रियाशील है। जब हम अपने अतीत के पृष्ठों में किसी ऐसे महामानव को चित्रित करना चाहते हैं, जिसने एकाकी अपनी प्रखर राष्ट्र-भक्ति, प्रगाढ़ धर्मानुराग, परिशाश्वत जाति-प्रेम, परमार्थिक जीवन दृष्टि, प्रत्युत्थित विवेक, प्रत्युत्पन्न बुद्धि-वैभव, प्रभूत साहस, प्रयापित इच्छा, प्ररूढ़ संकल्प, प्रयोज्य कर्म, प्रश्रित आचरण एवं प्रशान्त आत्मबल के द्वारा समसामयिक युग को नई चेतना प्रदान करने तथा सर्व-लोकोपकारी पथप्रशस्त करने में सफल हुआ, तो ज्ञान इतिवृत्तियों के प्रतिपरीक्षणोपरान्त केवल गुरु गोविन्दसिंह का व्यक्तित्व सर्वांग निर्दोष तथा प्रशंस्य विग्रह के रूप में हमारे मन-मस्तिष्क को सम्मोहित कर लेता है। विश्व इतिहास में स्वर्ण-युग के निर्माता अथवा नव-पंथ के प्रवर्तक कहे जाने वाले अनेकशः ऐतिहासिक पुरुषों का नामोल्लेख किया जा सकता है, परन्तु जब उनकी जन्मगत एवं कर्मगत उपलब्धियों के सम्यक् विश्लेषण के आधार पर श्रेष्ठता का निर्णय किया जाता है, तो गुरु गोविन्दसिंह श्रेष्ठतम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रमाणित होते हैं।

एक सन्त परम्परा का उत्तराधिकारी यदि आध्यात्मिक चिन्तन अथवा उपासना के क्षेत्र में स्वानुभूति के आधार पर मानव-समाज के कल्याण हेतु किसी नए पन्थ या परम्परागत पन्थ में नए मान प्रस्थापित करता है, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, परन्तु परम्परागत मान्यताओं में अल्पांश परिवर्तन अथवा संशोधन करने से संगठन में उपस्थित होने वाली विघटनात्मक प्रवृत्ति को दूर करने में कोई भी महापुरुष पूर्णतः सफल नहीं हो सका है। ब्राह्मण, बौद्ध, जैन, इस्लाम एवं ईसाई धर्म में द्रष्टव्य मत-मतान्तरों पर आधारित वर्ग-भेद मूल मान्यता में समय-समय पर किये गये परिवर्तनों, संशोधनों का ही प्रतिफल है। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह के व्यक्तित्व में आत्म-सम्प्रेषण की ऐसी अद्भुत शक्ति थी कि उसके द्वारा सिख धर्म के आचरणीय नियमों में अनेकशः संशोधन एवं नए नियमों के संस्थापन किये जाने के बाद भी सिख पन्थ विघटित न होकर पूर्वापेक्षा अधिक सुसंघटित ही हुआ। यह उस सन्त के निष्काम कर्म से उत्पन्न 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः' की उदात्त भावना की परिणति थी।

गुरु रामराय ने बादशाह औरंगजेब को प्रसन्न करने के लिए गुरुवाणी के एक पद विशेष में मुसलमान शब्द के स्थान पर बेईमान शब्द का प्रयोग किया जाना उचित माना था। इसके परिणामस्वरूप उसे सिखों का कोप-भाजन बनना पड़ा था। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि सिखों को अपने पन्थ की मूल मान्यताओं में अल्पांश परिवर्तन भी स्वीकार नहीं था। परन्तु इसके विपरीत हमें ऐसे भी उल्लेख प्राप्त होते हैं जब गुरु गोविन्दसिंह द्वारा किये गये परिवर्तनों को सिखों ने न केवल अपनी स्वीकृति ही प्रदान की, अपितु तदनुरूप आचरण की भी शपथ ली थी। इस संदर्भ में उपर्युक्त प्रकार की ही एक घटना का उल्लेख यथेष्ट होगा। एक बार मोहनलाल नामक व्यक्ति ने गुरु के प्रथम बादशाही का निम्न पद पढ़ा :—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नीले बस्तर कपड़े पहिरे तुर्क पठानी अमल भया।

गोविन्दसिंह ने तत्क्षण उसे निम्न प्रकार से संशोधित कर प्रस्तुत किया :

नीले बस्तर कपड़े फाड़े तुर्क पठानी अमल गया।

इसपर मोहनलाल ने गुरु गोविन्दसिंह पर गुरु रामराय के ही समान गुरुवाणी में परिवर्तन करने का आरोप लगाया। गुरु गोविन्दसिंह ने उसे जवाब देते हुए कहा, "वह और बात थी यह तबदीली और बात है।" स्पष्ट है कि निष्प्राण परम्पराओं में बँधे रहकर कुंठाओं के मध्य जीवित रहना यद्यपि उनको मान्य नहीं था तथापि मिथ्या यश एवं क्षणिक ऐश्वर्य के लिये सार (स्वधर्म) का विक्रय उन्हें स्वीकार नहीं था। धर्म की बलिवेदी पर आत्मोत्सर्ग करने वाले अपने पूर्वजों—यशःकाय श्री गुरु अर्जुनसिंह तथा श्री गुरु तेगबहादुर की परम उपलब्धि, 'सर दिया पर सार न दिया' को गुरु गद्दी की आन का अक्षय कीर्त-स्तम्भ मानने वाले गुरु गोविन्दसिंह अपने पूर्वजों के अधूरे कार्य को पूर्ण करने में ही अपने जीवन की सफलता मानते थे।

इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए शहंशाह औरंगजेब द्वारा अपनाई गई आपत्तिजनक ही नहीं, अपितु मानव-विरोधी नीतियों का विरोध करने के लिए एक अति सामान्य फकीर का सामने आना, विश्व इतिहास की एक अत्यन्त ही रोमांचकारी और विलक्षण इतिवृत्ति है। वह साधारण फकीर गुरु गोविन्दसिंह था, जिसने गुरु अर्जुनदेव और तेगबहादुर के आत्मोत्सर्ग की घटनाओं से प्रेरणा प्राप्त कर समग्र हिन्दू-समाज को ऐसा आत्मबल प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप मुगल प्रशासन तलवार के बल पर भी हिन्दुओं को धर्म-विमुख न कर सका। आततायी मुगल सैन्य-शक्ति के विरुद्ध आत्म सुरक्षा के लिए जिस सैनिक वृत्ति, अनुशासित आचरण और राष्ट्र, जाति एवं धर्म प्रेम के आधार पर संगठन का प्रतिमान फकीर गोविन्दसिंह द्वारा प्रस्तुत किया गया, वह विश्व इतिहास में अपने ढंग का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अकेला उदाहरण है। सम्पूर्ण हिन्दू समाज को एकता के पावन सूत्र में पिरोकर एक अपराजेय शक्ति के रूप में प्रस्तुत करने के अपने संकल्प को पूर्ण करने के लिए पंजाब के पहाड़ी राजाओं को एक संघ शक्ति के रूप में संघटित होने के लिए उन्होंने आमंत्रित किया। परन्तु सांसारिक प्रपंचों में फंसे पहाड़ी हिन्दू राजागण इस फकीर पर विश्वास न कर सके। उन्होंने गुरु गोविन्दसिंह से उनके संकल्प की असत्य अनुमान पर आधारित महत्त्वाकांक्षा निरूपित करते हुए कहला भेजा कि कहाँ एक मुगल साम्राज्य और कहाँ एक साधारण संत। बिना राज्य प्रश्रय प्राप्त किये सफलता के उच्च शिखर पर अपने पन्थ को पहुँचा देने वाला गुरु गोविन्दसिंह विश्व-धर्म के इतिहास में अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करने वाला एक मात्र यशस्वी महापुरुष था। लक्ष-लक्ष वेतन भोगी सैनिकों तथा उत्तमोत्तम अस्त्र-शस्त्रों से युक्त होने पर भी विरले ही व्यक्तियों को इस प्रकार की बहुप्रशंसित सामरिक सफलता प्राप्त हुई है, जैसा अपने अल्प-संख्यक आस्थावान भक्त सैनिकों की सहायता से गुरु गोविन्दसिंह ने अर्जित की थी। अपने जीवन की सार्थकता को स्पष्ट करते हुए उन्होंने स्वयं ही लिखा—

चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ,
सवा लाख से एक भिड़ाऊँ,
तब नाम गोविन्द पाऊँ।

अपनी वैयक्तिक उपलब्धियों द्वारा उन्होंने मरणासन्न हिन्दू-समाज, धर्म एवं संस्कृति को अजस्र प्राण वायु प्रदान किया है। भारतीय संस्कृति के संरक्षक के रूप में उनकी सफलताओं का विवेचन करने से पूर्व उनके सर्वलोकानुरंजक जीवन-दर्शन पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

जीवन दर्शन

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा है कि हे कौन्तेय, जब-जब धर्म क्षीण होने लगता, तब-तब सन्तों के परित्राणार्थ तथा दुष्टों के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विनाशार्थ स्वधर्म के संस्थापनार्थ मैं अवतार लेता हूँ।

गुरु गोविन्दसिंह ने अपने 'विचित्र नाटक' में लिखा है :—

हम इहि काज जगत में आये, धर्म हेतु गुरु देव पठाये।
जहाँ-तहाँ तुम धर्म बिठारो, दुष्ट दो के पकर पछारो।
येहि काज धरा हम जनमें, समझ लेव साधु सब मन में।
धर्म चलावन, संत उबारन, दुष्ट सभन को मूल उपारन।

संशय नहीं कि गुरु की इस वाणी में गीता की स्पष्ट छाया दीख पड़ती है, परन्तु यहाँ पर गुरु गोविन्दसिंह में दासानुदास वृत्ति का ही उद्‌बोधन होता है। यद्यपि एक स्थल पर उन्होंने अपने जन्म को अवतार बताने का भी प्रयास किया है। उन्होंने लिखा है :—

जो-जो भये पहल अवतारा, आप-आप तिन जाप उचारा।
प्रख दोखि कोई न बिदारा, धरम करम को राह न डारा।
जो-जो गयउ अंबिय भये, मैं मैं करत जगत ते गये।
महापुरुष को काहु न पहचाना, करम धरम को काहु न जाना।

गोविन्दसिंह की इस उक्ति में पूर्व अवतारों की असफलता का स्पष्ट निर्देश है। इसके अतिरिक्त उन्होंने आगे चलकर अपने जन्म को देव कारज हेतु बतलाते हुए लिखा है—

तिन प्रभ जब आयस मोहे दिया, तब हम जनम कलु में लिया।
चित न भयो हमरो अवन को, चुभि रही श्रुत प्रभ चरणन में।
जियों तियों प्रभु हमको समझायो, इम कहिक इहि लोक पठायो।

यहाँ पर गुरु गोविन्दसिंह एक महान देव कार्य के सफल संपादन के हेतु श्री अकाल पुरुष की आज्ञा से अपने अवतार की बात कहते हैं। उनका यह देव-कार्य था, हिन्दू-धर्म की रक्षा करना। उन्होंने अन्यत्र उन लोगों की भर्त्सना की है जो उन्हें भगवान के रूप में मानते हैं :—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जो हमको परमेश्वर उच्चारहैं, ते सम नरक कुंड में परहैं ।
मोको दास सबन को जानो, या में भेद न रंच पहचानो ।
मैं हों परम पुरुष को दासा, देखन आयो जगत तमाशा ।

गुरु गोविन्दसिंह ने अपने-आपको अकाल पुरुष का दास मानकर एक निष्काम कर्मयोगी के समान परमार्थिक जीवन व्यतीत करते हुए अपनी समस्त उपलब्धियों का श्रेय उन्हीं अकाल पुरुष को कारण रूप में मानकर उसी असिधज के श्री चरणों में अर्पित कर दिया । सर्वशक्तिमान अकाल पुरुष में उनके आत्म-समर्पण की भावना का बोध निम्न पद में होता है:—

पंथ चले तब जगत में, जब तुम करो सहाय ।

जीवन के प्रति इस दार्शनिक दृष्टि को स्वीकार कर लेने से गुरु गोविन्दसिंह सांसारिक माया-मोह से बचे रहे। सफलताएं न उन्हें पथ-भ्रष्ट कर सकीं और न ही असफलताओं से वे कभी विचलित हुए । हर्ष और विषाद दोनों ही उनके लिए बराबर थे। वैयक्तिक स्तर पर बड़ी-से-बड़ी क्षति भी देवकार्य के लिए समर्पित जीवन-क्रम में कोई परिवर्तन न ला सकी। सरहिन्द के सूबेदार द्वारा अपने दो लाड़ले बेटों को दिवाल में चुन दिये जाने का समाचार पा वे स्थितप्रज्ञ बने रहे। इस समाचार को पाकर उन्होंने केवल इतना ही कहा :—

'हाल मुरीदां दा कहना प्रीतम प्यारे नूं ।'

अर्थात् आप सब प्रियतम प्यारे के पास चले गये हैं। उसको जाकर उसके भक्तों का हाल बताना कि उनके सिर पर क्या गुज़र रही है । वस्तुतः गुरु गोविन्दसिंह की सफलताओं का रहस्य उसके जीवन की इस दार्शनिकता में निहित है ।

श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कन्ध पर आधारित अपनी कृति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कृष्णावतार में अपने जीवन के ध्येय को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है :—

'अवर वासना नाहि कछु, धर्म युद्ध की चाह।'

गुरु गोविन्दसिंह द्वारा प्रयुक्त धर्मयुद्ध की स्पष्ट व्याख्या कर सकना अत्यन्त कठिन कार्य है। महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य में महाराजा रघु को धर्म-विजयी नृप कहा है। टीकाकार मल्लिनाथ ने लिखा है कि जो राजा केवल अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करने के लिए किसी राजा को पराजित करता है, पश्चात् पराजित राजा पर अनुग्रह करते हुए उसे उसका राज्य कोष आदि पुनः वापस दे देता है, वह धर्म-विजयी नृप कहलाता है। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के सम्बन्ध में भी ऐसा ही उल्लेख इलाहाबाद प्रशस्ति में उत्कीर्ण मिलता है। इन उल्लेखों के आधार पर कोई समालोचक यह आरोप लगा सकता है कि गुरु गोविन्दसिंह के धर्म-युद्ध का मूलरूप वैयक्तिक महत्त्वाकाँक्षाएँ थीं। परन्तु इस प्रकार का आरोप कदापि तर्क-संगत नहीं स्वीकार किया जा सकता। जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, उनकी भक्ति दासानुदास की भक्ति थी। उनका सर्वस्व श्री अकाल को समर्पित था। उनके सब कार्य उस परम पुरुष की सदिच्छाओं, उनके कार्यों का ध्येय 'स्व' की परिधि में समग्र का कल्याण संपादन द्वारा पूर्ण होता था। वैयक्तिक जीवन को मूल ध्येय की प्राप्ति का निमित्त मात्र मानकर वे उन्हीं श्री अकाल पुरुष से सफलता की प्रार्थना करते हुए कहते हैं, 'हे असिधज, मुझे वरदान दो कि मैं सत्कर्मों से कभी भी विमुख न होऊँ। मैं किसी से भी भयभीत न होऊँ। जब संग्राम में प्रविष्ट होऊँ, तो निश्चय ही विजयी रहूं :—

दे शिव वर मोहे इहई शुभ कर्मन ते कभूं नाह टरऊँ।
नाह डरऊँ अरसों, जब जाई लरऊँ निश्चई कर अपनी जीत कराऊँ।

वस्तुतः गुरु गोविन्दसिंह जीवन को ही युद्ध क्षेत्र मानते थे और उनकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दृष्टि में धर्म जीवन में ऋजुता के संपादन के लिए समर्थ सहायक था। वैयक्तिक स्वार्थ के लिए इसमें कहीं कोई स्थान वे नहीं मानते थे। अपने अनुयायियों को उपदेश देते हुए एक स्थल पर उन्होंने कहा है —

घन जियो ते को जग में मुख में हर चित्त में जुद्ध विचार।

अर्थात्, इस संसार में उन्हीं व्यक्तियों का जीवन धन्य है जो हमेशा उस निरंकार को स्मरण करते रहते हैं और जो निरन्तर युद्ध के बारे में ही सोचते रहते हैं। इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्मयुद्ध के सम्बन्ध में उनका अत्यन्त ही व्यापक दृष्टिकोण था।

अपने जीवन में गुरु गोविन्दसिंह ने धर्मयुद्ध की चुनौती को स्वीकार किया था और अपने विविध कार्यों द्वारा उन्होंने व्यापक सफलताएँ प्राप्त कीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

डॉ० ओमप्रकाश शास्त्री

५. एक शौर्य प्रतीक

श्री गोविन्दसिंह के नाम के साथ जब मैं 'गुरु' शब्द जुड़ा हुआ पढ़ता हूँ तो दो भाव जागते हैं। एक तो पंथ विशेष का, जिसके कारण उन्हें दशम गुरु कहा जाता है, यह धार्मिक प्रवृत्ति का सूचक है, और दूसरा 'गुरु' शब्द से ध्यान दूर जा टिकता --- महाभारतकालीन 'गुरु' द्रोणाचार्य पर। द्रोणाचार्य भी 'गुरु' थे और महाभारत का काल भी ऐसी अशान्त धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक स्थिति से आक्रान्त था, जैसे 'गुरु' गोविन्दसिंह के काल में पुनः उभरी थी। इतिहास ने उसे पुनः दोहराया था। द्रोणाचार्य ने कहा था कि 'शापादपि शरादपि' अपने अधिकार की रक्षा करूँगा। वही स्थिति 'गुरु' गोविन्दसिंहजी की भी लगती है कि वे शरों से भी सिरों का खिलवाड़ करते रहे और शाप-ताप से भी अरि-दल को शापित-तापित करते रहे। ज़फरनामा गुरु गोविन्दसिंह द्वारा औरंगजेब के नाम लिखा गया शाप-पत्र ही तो है !

'गुरु' शब्द से अलंकृत गोविन्दसिंह ने सेना को अपने गुरुत्व से गौरवान्वित किया। द्रोणाचार्य की भांति आबाल्यात् ही अस्त्र-संचालन एवं शस्त्र-प्रशिक्षण का 'गुरु' गौरव अंगीकार किया। मुझे द्रोणाचार्य और 'गुरु' गोविन्दसिंह की अकाल महिमा मंडित समता भली लगती है, भाती है।

दूसरी दृष्टि से देखिए 'गुरु' गोविन्दसिंहजी के पिता गुरु तेगबहादुर शत्रु षड्यंत्र के शिकार हुए, तभी गुरु गोविन्दसिंह वास्तव में योद्धा रूप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में साकार हुए। उनमें योद्धा साहित्यिक का रूप उभरा। कितना विचित्र संयोग है, साहित्य और शस्त्र का। न एक वृद्धत्व में हास्य का कारण बनी, न दूसरी महिमा में अधिक बढ़ी। दोनों सूर्य की धूपोपमावत्, किरणालोकसम जग को आभामय बनाती रहीं, लजाती रहीं।

तीसरी दृष्टि में देखिए गुरु योद्धा बने; क्योंकि वे अपनी सारी सेना के सैनिक प्रशिक्षक गुरु थे। उनकी सेना ने भंगानी, नादौन, हुसैनी, आनन्दपुर, चमकौर और मुक्तसर स्थलों पर युद्ध किए। भंगानी में उन्होंने भीमनंद और फतेहशाह का मान भंग किया। नादौन में गोविन्दसिंहजी के साथ वे शत्रु लड़े जो दीन में (धर्म में) विश्वास नहीं रखते थे। ना-दीने थे। दीन-हीनों को वहाँ पराजय मिली, हुसैनी में हुसैन का 'हुसन' युद्ध स्थल में ही रक्तलीन हो गया, आनन्दपुर में गुरुजी ने युद्ध विद्या का वास्तविक आनन्द लिया, चमकौर में उनका खड्ग फिर चमका और अन्ततोगत्वा मुक्तसर नाम पाने वाले स्थान में गुरु गोविन्दसिंह के हाथों से मर कर कितने पापात्मा मुक्त हो गए। यह मुक्तों का सर अब भी श्रद्धा स्थल है। एक दूसरा अर्थ भी इन युद्धों का है, जो अलौकिक है। गुरुजी ने अपनी अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति से शरीर में विश्वास करने वालों का भंगानी में मोह भंग किया। नादौन में दीन-हीनों को अनन्त शक्ति का विश्वास न होने की चेतावनी दी, हुसैनी में हुसन पर, रूप पर, वाह्याडम्बर पर, सांसारिक ऐश्वर्य के विश्वासियों को चेतावनी दी, कि हुस्न से जीवन महिमामय नहीं बनता, आनन्दपुर में आत्मा और शरीर का क्रीड़ामय आनन्द प्राप्त किया, चमकौर में आत्म-तेज चमकाया। शत्रु समान सब मोह, माया, ममता, क्रोध, लोभादि विकारों को स्वतेज से परास्त किया और अन्ततः मुक्तसर नाम रखकर जीवन-मुक्त महापुरुष की महिमा का स्वरूप स्थापित किया। लौकिक और आध्यात्मिक युद्ध के इस समानार्थ बोधी तथ्य की ओर भी साहित्यिकों, राजनीतिज्ञों, धार्मिकों, एवं आलोचकों का ध्यान जाना चाहिए। अकाल पुरुष के प्रताप का ऐसा प्रबल संयोग गुरु गोविन्दसिंह को ही प्राप्त हुआ। परन्तु धन्य

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है वह दशमेश, जिन्होंने तब भी अपने को अवतार न माना। वे उस परम पुरुष के दास ही बने, जिन्होंने श्रीकृष्ण रूप में सोलह कलापूर्ण अवतार लेकर, युद्ध-स्थल में शास्त्रसार गीता का उपदेश देकर अर्जुन का गुरु बनकर धर्म-शासन स्थापना हेतु अन्याय-अत्याचार का नाश किया। सेना-गुरु श्री गोविन्दसिंह का जीवन श्रीकृष्ण चरित के गुरुत्व एवं गौरव से प्रभावित था। वे भी जीवन में लड़े, अलिप्त रहकर। इसलिए परम पुरुष का दास होना भला लगा। उन्होंने कहा है—

जो मो को परमेश्वर उच्चरिहै,
ते नर नरक कुंड महि परिहै।
मैं हों परम पुरुष को दासा,
देखन आयो जगत तमासा।

कितनी विचित्र बात है कि महाभारत का गोविन्द (श्रीकृष्ण) इस युग में फिर आया, परन्तु अवतार बनकर नहीं, परम पुरुष का दास बनकर। संभवतः दास की महिमा दासपति से इसलिए अधिक है कि दास का किया कार्य दासपति ने सदा 'अरदास' के रूप में स्वीकार किया है। गुरु गोविन्दसिंह की युद्धमयी अरदास धन्य है।

चौथी दृष्टि लीजिए—हर योद्धा यह जानता है कि जो युद्ध में लड़ता है, वह वीर है और जो युद्ध से भागता है, वह कायर है। शूर चाहे राजनीति युद्ध-क्षेत्र का हो या भक्ति-क्षेत्र का, दोनों में जात-पांत का भेदभाव नहीं होता, नहीं रहता। 'जात-पांत पूछे ना कोई, हरि को भजे सो हरि का होई' की युक्ति कबीर की है, वह भी योद्धा था, भक्ति क्षेत्र का। वहां साधुओं की जाति-पांति का भेद कोई नहीं जानता। कोई नहीं पूछता। यही तथ्य सेना में भी रहना चाहिए। इस सत्य को भारतीय योद्धा आदिकाल से जानते आये हैं। भगवान् राम की सेना में वानर, नर, किरात, निषादादि सब थे। कहीं भेदभाव न था। महाभारत के युद्ध स्थल कुरुक्षेत्र में अक्षोहिणी ही भिड़ी थी। देश, जाति, भेद वहां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी न था, नहीं तो कर्ण क्यों लड़ता, घटोत्कच क्यों अड़ता ? परम्परा में चन्द्रगुप्त, हर्षवर्धन, हमीर, राणा प्रताप, शिवाजी की सेनाएँ कब जाति-पांति के भेदभाव पर खड़ी रहीं। सैनिक सब समान माने गए। घायलावस्था में तो स्व-पर पक्ष के सैनिक भी समान समझे गए। इसी लम्बी परम्परा में गुरु गोविन्दसिंह की सेना में भी उस परम्परा-पालन की सार्थकता निबाही जाती थी। गुरु गोविन्दसिंह के सैनिक 'शिष्य सैनिक' थे। उन सबके लिए 'लंगर' लगता था। 'लंगर' समताबोधक आयोजन था। उसमें खानपान, रहन-सहन में सब समान थे। चिकित्सा में समान थे। प्रेम, सहृदयता में समान थे। 'लंगर' गुरु गोविन्दसिंह की प्रजातंत्रात्मक सहृदयता का प्रतीक था। लंगर सैनिक-असैनिक सभी के लिए अचूक प्रेम सूचक पावन मानवता का मधुरस्थल था, जिसे गुरु गोविन्दसिंह ने अपने सैनिकों के लिए योजनाबद्ध रूप से प्रारंभ किया था, जो अब धार्मिक प्रतीक बन गया है। यह कितना समभाव प्रभावी प्रतिभा युक्त गुरु गौरवता है कि लंगर लगाओ, डटकर खाओ और लंगर जमाओ से डटकर खंड चलाओ और लंगर उठाओ तो अरिदल को भगाते जाओ। वाह गुरु ! वाह ! तेरा यह सैनिक समानभाव आयोजन अपूर्व रहा।

पांचवीं दृष्टि में, गोविन्दसिंहजी के युद्धों की एक नीति को देखिए, अत्यन्त प्राचीन काल में राजा भी लड़ते थे। वे स्वयं युद्ध में जाते थे, क्योंकि सेना थोड़ी होती होगी। फिर ऐसा काल आया, जब राजा महलों में बैठे रहते और सेना हार-जीत जाती, तब राजा उदास या सोल्लास होता था, परन्तु काल ने पलटा खाया और राजा हर्षवर्धन ने पुनः क्रम बदल दिया। स्वयं युद्ध में हर्षवर्धन लड़ा। फिर परम्परा चली पृथ्वीराज, राणा प्रताप, शिवाजी की, जो स्वयं बीच मैदान अड़ते रहे। हार-जीत का प्रश्न अलग होता। परन्तु युद्धस्थल में सेना के साथ या मध्य में स्वयं विराजना सैनिकों के लिए प्रेरणा-केन्द्र होता है। गुरु गोविन्दसिंह ने इस परम्परा का भी पालन अक्षरशः किया, हर युद्ध में स्वयं विराजमान रहते थे। सैनिक आ जा रहे हैं, कट-मर रहे हैं, गुरुजी या तो युद्ध-मंत्रणा में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विचारलीन हैं या युद्धस्थल में अश्वारोही होकर युद्धलीन हैं । शत्रुओं द्वारा तीन तीर उनको मारने का वर्णन भंगानी और नादोन युद्धों में है, अन्यों में गोली, तलवार की चर्चा है, परन्तु क्या मजाल जो गुरु गोविन्द-सिंह विचलित हों, वे स्थिर खड़े हैं । जब-जब पीछे हटे हैं, स्थान बदले हैं, शत्रुओं की धार्मिक शपथभरी चालों से या अरि दल की कूटनीति कुचालों से, तब भी गोविन्दसिंहजी के योद्धा रूप ने मात नहीं खायी, कभी विपक्षी पर घात नहीं लगायी । पवित्र युद्ध किया । स्वयं अपने सैनिक के मध्यवर्ती रहकर । चक्र की नेमि बने हुए और सैनिकों को औरों की भांति चारों ओर घूमते-घुमाते रहे । यह है सैनिक हृदय जीतने का, और युद्धभूमि में पल-पल मृत्यु जीतने का और जीवन में जीने का अद्भुत साहस । यह साहस वीरात्मा का है, जो हमारी सैनिक शक्ति का अपराजेय अंग है ।

छठी दृष्टि में, गुरु गोविन्दसिंहजी के आनन्दपुर के महा योद्धा का रूप दर्शनीय है । सभी पर्वतीय राजा एक ओर; और गुरु गोविन्दसिंह एक ओर । मुझे पुनः महाभारत लौटता दीखता है, दुर्योधन और अर्जुन श्रीकृष्ण के पास गए । दुर्योधन सिरहाने बैठा और अर्जुन पांव की ओर । प्रतीक्षा हुई, श्रीकृष्ण ने निद्रा त्यागी । सामने दीखा—धनंजय, मुड़कर देखा तो दुर्योधन । दो पक्ष विराजमान । पहले अर्जुन को देखा था इसलिए पूछा, "कहो धनंजय, कैसे आए !" धनंजय बोला, "सहायता के लिए ।" दुर्योधन सशंकित हुआ कि कहीं बाजी यह मार न ले जाए, अतः बोल उठा—"मैं पहले आया हूँ । मैं पहले सहायता मांगने का अधिकारी हूँ ।" बेचारा अर्जुन चुप रह गया । दुर्योधन ने पायी असंख्य सेना और अर्जुन ने पाया अकेला श्रीकृष्ण, अकेला गोविन्द । है न वही कथा पुनः उठी हुई । गुरु गोविन्दसिंह ने भी कहा है कि 'अवर वासना नहिं प्रभु, धर्मयुद्ध के चाय' । अर्थात्, धर्म-युद्ध का चाव ही गुरु गोविन्द का जीवन लक्ष्य था । आनन्दपुर का युद्ध धर्मयुद्ध है । एक ओर सभी पर्वतीय राजा दल बांधकर आए । राजा भीमचन्द, भूपचन्द, अजमेरचन्द, केसरीचन्द···और न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाने कौन-कौन राजा इकट्ठे हो गए। सेना की संख्या तीन लाख से ऊपर बढ़ गयी। (दि सिक्ख रिलीजन—भाग ५, पृष्ठ १३६) औरंगजेब भी आ मिला उनसे। इधर गुरु गोविन्दसिंह, परन्तु परम पुरुष दास है यह गोविन्द। और, उनके युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव जैसे प्यारे सैनिक पांच थेथा पांच सौ थे, परन्तु जैसे पांडवों की सेना अल्प-संख्यक होने के कारण विजयी हुई, ठीक उसी भांति गुरु गोविन्द-सिंह के खड़े रहते सेना न घबड़ायी। कई दाँव लड़े, पेच डाले गये। धार्मिक, राजनीतिक सन्धि, प्रलोभन दिये गए परन्तु गुरु गोविन्द अड़े रहे। वह टस से मस न हुए। वैशाली का राजा भी सहायक हुआ। रणनीति बदली गई, गुरुजी की सेना अपना दमखम दिखाती रही। उधर पर्वतीय राजदल दुर्योधन का दम्भ रूप धारण कर लड़ता रहा, इधर गोविन्द का अर्जुन—अजीत, उदय, साहब सिंह दल युद्ध में उन्हें दलता रहा। पर्वतीय शकुनीदल कुमंत्रणाएं गढ़ता रहा और गुरु का सुमंत्र उनके प्रभाव को गलाता अपनी अमोघ शक्ति से लड़ता रहा। शत्रु-पक्ष में भीमचन्द, भूपचन्द (चन्द)···चन्द्रमा के क्षयी स्वभाव के कारण पराजित होते गए और गुरु गोविन्द का प्रताप सूर्य गगन में चढ़ता गया। यद्यपि कुछ काल के लिए दांवपेचों की मेघावलियों से यह सूर्य आच्छन्न हुआ, परन्तु अन्ततः अपने पूर्ण प्रकाश में चमका और शत्रुता प्रतीक अंधकारमयी रात बीत गई, परन्तु जगत तमाशा देखकर गुरुदेव आनन्दपुर से चल दिए, १५ माघ संवत् १७६१ को आधी रात में आनन्दपुर से उन्होंने प्रस्थान किया। प्रमाण यह है—

संवत सत्रह सहस सुमधि माघ इकाहट भयो सयुद्ध,
तब करुणा निधि कियो पियाना,
सुखासिंह सुनियो इह काना।

(गुरु विलास—पृष्ठ ४१६)

गुरुजी आनन्दपुर से सरसा नदी पार कर रोपड़ पहुंच गए। तब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शत्रु रो पड़े, गुरु हंस पड़े थे।

उद्धरणों की संगति से बचते हुए मैंने गुरु गोविन्दसिंह के योद्धा रूप शौर्य प्रतीक को अपनी धारणा दृष्टि से देखा है। मुझे उनका रण योद्धावत् साहित्यिक योद्धा का रूप भी प्रिय है। परन्तु उसका उल्लेख यहाँ वांछनीय नहीं है, तथापि सच्चे गुरु पद के अधिकारी श्री गुरु गोविन्दसिंह का यह रूप भारतीय जन-मन के लिए वंदनीय है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पं० बलवीरसिंह शास्त्री

६. बाल-लीला : मैनी संगत

इतिहासकारों का अनुमान है कि करीबन पांच-छः सौ वर्ष पहले जिस समय मुस्लिम शासकों का काल था, दिल्ली से बहुतेरे शासक प्रतिनिधि विभिन्न सूबों में भेजे जाते थे और वह भिन्न-भिन्न विभागों में काम करते थे। इसी सिलसिले में पटना नगर अजीमाबाद में भी बहुतेरे उच्च पदाधिकारी भेजे गये थे, जिन्हें इस सूबे की देख-रेख, शासन-व्यवस्था का भार सौंपा गया था। उन्हें काफी जागीरें दी जाती थीं और सभी सुविधाएं एवं रईसी राजा के से ढंग के रहने-सहने की व्यवस्था दी जाती थी। इसी सिलसिले में उस जमाने में बहुतेरे खत्री कर्मचारी पटना में भी भेजे गये थे, जो हिन्दुओं में हिलमिल कर रहते और कार्य करते थे। उन्हीं में थे मैनी जाति के खत्री परिवार। ये लोग बड़े रईस और परम सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू थे। ज्यादा दिन हो जाने के कारण यहां लोग बस गये, पटना सिटी के पटनदेवीजी की गली में इनका स्थायी आवास हो गया था। कुछ लोगों का कहना है कि जब-जब पश्चिम में विदेशियों का आक्रमण हुआ, उधर से लोग आये और पाटलिपुत्र बस गये। जैसे अभी कुछ वर्ष पहले हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बंटवारे के समय बहुतेरे लोग पश्चिम से आये और यहां अब बस रहे हैं। उसी तरह उन दिनों भी लोग काफी संख्या में आये। ये लोग धार्मिक विचार के और ईश्वर पर भरोसा रखने वाले थे। इन लोगों की कुल-देवता भी महाशक्ति स्वरूपिणी दुर्गा ही होती थी, इसलिए आने वाले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शत्रु रो पड़े, गुरु हंस पड़े थे।

उद्धरणों की संगति से बचते हुए मैंने गुरु गोविन्दसिंह के योद्धा रूप शौर्य प्रतीक को अपनी धारणा दृष्टि से देखा है। मुझे उनका रण योद्धावत् साहित्यिक योद्धा का रूप भी प्रिय है। परन्तु उसका उल्लेख यहाँ वांछनीय नहीं है, तथापि सच्चे गुरु पद के अधिकारी श्री गुरु गोविन्दसिंह का यह रूप भारतीय जन-मन के लिए वंदनीय है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पं० बलवीरसिंह शास्त्री

६. बाल-लीला : मैनी संगत

इतिहासकारों का अनुमान है कि करीबन पांच-छः सौ वर्ष पहले जिस समय मुस्लिम शासकों का काल था, दिल्ली से बहुतेरे शासक प्रतिनिधि विभिन्न सूबों में भेजे जाते थे और वह भिन्न-भिन्न विभागों में काम करते थे। इसी सिलसिले में पटना नगर अजीमाबाद में भी बहुतेरे उच्च पदाधिकारी भेजे गये थे, जिन्हें इस सूबे की देख-रेख, शासन-व्यवस्था का भार सौंपा गया था। उन्हें काफी जागीरें दी जाती थीं और सभी सुविधाएं एवं रईसी राजा के से ढंग के रहने-सहने की व्यवस्था दी जाती थी। इसी सिलसिले में उस जमाने में बहुतेरे खत्री कर्मचारी पटना में भी भेजे गये थे, जो हिन्दुओं में हिलमिल कर रहते और कार्य करते थे। उन्हीं में थे मैनी जाति के खत्री परिवार। ये लोग बड़े रईस और परम सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू थे। ज्यादा दिन हो जाने के कारण यहां लोग बस गये, पटना सिटी के पटनदेवीजी की गली में इनका स्थायी आवास हो गया था। कुछ लोगों का कहना है कि जब-जब पश्चिम में विदेशियों का आक्रमण हुआ, उधर से लोग आये और पाटलिपुत्र बस गये। जैसे अभी कुछ वर्ष पहले हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के बंटवारे के समय बहुतेरे लोग पश्चिम से आये और यहां अब बस रहे हैं। उसी तरह उन दिनों भी लोग काफी संख्या में आये। ये लोग धार्मिक विचार के और ईश्वर पर भरोसा रखने वाले थे। इन लोगों की कुल-देवता भी महाशक्ति स्वरूपिणी दुर्गा ही होती थी, इसलिए आने वाले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खत्री लोग पटनदेवी तथा काली के प्राचीन मंदिर के इर्द-गिर्द ही बस गये। उन खत्रियों की कुल परम्परा आज भी चली आ रही है जो यहां बसे हुए हैं, उन्हीं में थे मैनी गोत्र खत्री के खानदान के सर्व सम्पन्न राजा फतेहचन्दजी, जो ईसा की १८वीं शताब्दी में हुए थे। इनकी स्त्री थी परम सौभाग्यवती रानी श्री विश्वम्भरा देवी। नगर के प्रतिष्ठित नागरिक समझे जाते थे। लोगों में धाक और बात भी थी। दान-धर्म और साधु-सन्तों की पूजा प्रतिष्ठा भी होती थी। गो-ब्राह्मणों का सम्मान भी था। सच्चरित्रता एवं नैतिकता के ये दोनों दम्पति मूर्ति ही थे। सभी तरह से सुख साधन-सम्पन्न जीवन व्यतीत हो रहा था। परन्तु घर में कोई बालक नहीं। राजा-रानी दोनों ही अपनी युवावस्था ढलती हुई देखकर चिन्तित होने लगे। जैसा कि आम लोगों में होता है कि सन्तान न होने पर लोग तरह-तरह के उपाय, चिन्ता करने लगते हैं। राजा फतहचन्द तो खैर पुरुष थे, राज-काज के काम में समय जाता था। पर, महारानी विश्वम्भरा को धीरे-धीरे घोर चिन्ता होने लगी। दिन-रात गमगीन रहती और तरह-तरह की बात मन में सोचती रहती। जो जैसा भी उपाय बतलाता यत्र-मंत्र, टोटका, मनौती सभी कराकर थक बैठी थी। सन्तान का सुख उनकी प्रारब्ध में नहीं था। कभी-कभी वह सोचती कि सारा का सारा राज्य, ये धन-सम्पत्ति किस काम का जबकि घर में पुत्र नहीं है, भविष्य में देखनेवाली सन्तान नहीं। नाम लेवा और पानी देने वाला पुत्र ही नहीं तो ये सब बेकार है। इस तरह चिन्ता में बराबर घुलती ही रहती थी।

एक दिन की बात है। उन दिनों गुरु तेगबहादुरजी का परिवार पटना आ चुका था और उनकी धर्मपत्नी माता गुजरी को यहीं एक सन्तान पैदा हो चुकी थी। लड़का भी चार-पांच साल का हो चुका था। नगर में इस लड़के की बड़ी चर्चा थी। इसकी चंचलता, चपलता, मधुर-भाषिता, रूप-सौंदर्य, आमोद-प्रमोद, रहन-सहन और बातचीत से लोग बहुत प्रभावित हो चले थे। गुरुजी के लड़के थे, रहन-सहन और सलीकियत,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अदब, तमीज, बेहद थी। जो भी देखता, देखता रह जाता। उसे काठ मार जाता, खिच जाता। लोग आश्चर्यचकित हो जाते कि यह देवलोक का बालक इस मनुष्य लोक में कैसे आ पहुंचा। जब कभी अपने नौकर-चाकरों के साथ इधर-उधर बाजार-हाट घूमने निकलते, तो लोग चित्र देखने की तरह देखते रह जाते थे। अनुपम छवि, अलौकिक प्रतिमा, अपार कोमलता, उद्‌बुद्ध चेतना, मीठी तुतली वाणी किस देखने वाले को अपनी ओर न खींच लेती थी। पुराने पटना निवासियों में यह जन-श्रुति है कि गोविन्दराय जब भी बाजार में आते, तो उन्हें देखने वाले घेर लिया करते थे। सैकड़ों की भीड़ में वह तेजस्वी बालक उद्दीप्त दीप-शिखा की तरह जाज्वल्यमान प्रतीत होते थे। कानों-कान शहर में बड़ी चर्चा चल पड़ी। जहां भी देखो, गुरु तेगबहादुर के लड़के गोविन्द राय की ही चर्चा होने लगती। धार्मिक मनोवृत्ति के लोग कहते, यह बालक कोई अवतारी पुरुष है। यह मनुष्य नहीं देवता है। कोई कहता, यह भगवान कृष्ण के अवतार हैं, कोई कहते राम के अवतार हैं। कोई कहता हो न हो यह कोई देव-लोक से आया हुआ बालक है। पटना नगर में उन दिनों तरह-तरह की चर्चा, अनुमान और विचार थे। उन्हीं में चिमनी घाट का घाटिया भी एक व्यक्ति था, जिसको विश्वास था और दृढ़ विश्वास हो गया था कि यह बालक साक्षात् परम पुरुषोत्तम परमात्मा ही है। वह बराबर कहता कि मुझे स्वप्न हुआ है और मैंने स्वप्न में भी इसी बालक को देखा है कि वह कह रहा है कि मैं इस संसार के उद्धार के लिए आ गया हूँ। उस ब्राह्मण को इस बालक पर बड़ी निष्ठा हो गई थी। उसके सामने अब कोई भी देवी-देवता नहीं जंचते थे। उसके यजमान उससे जो भी कुछ दुःख-सुख कहता, अपनी कामना की पूर्ति के लिए मनौती करता, उसे वह घाटिया कहता कि अरे गुरु तेगबहादुर के उस लड़के का ध्यान करो। वह परमात्मा-रूप आया है, वह तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेगा। उसे अटल विश्वास और दृढ़ निष्ठा हो गई थी। जब भी महाराज गंगा नहाने या घूमने गंगाजी आते,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तो वह उनकी छवि में विभोर हो जाता। वह तन्मय हो जाता। वह भूल जाता अपनी सुध-बुध को। उसे तो गोविन्दराय साक्षात् ईश्वर ही दिखलाई पड़ते। संयोग की बात, संक्रान्ति का दिन था। महारानी विश्वम्भरा गंगा नहाने आयी। नहा-धोकर घाटिया को दान-पुण्य देकर निवेदन किया कि महाराज मुझे कोई सन्तान अभी तक नहीं हुई है। कोई उपाय बतलाइए। कोई यंत्र-मंत्र-तंत्र, जप, पूजा आराधना कीजिए। घाटिया महाराज ने छूटते ही कहा कि महारानी, आपके ही मुहल्ले में साक्षात् परमात्मा का आगमन हो गया है। आप उनकी आराधना कीजिये। वह आपकी मनोकामना पूर्ण अवश्य करेंगे। महारानी विश्वम्भरा देवी ने बालक गोविन्दराय की थोड़ी-बहुत चर्चा सुनी अवश्य थी, पर उसपर उन्होंने ध्यान नहीं दिया था, पर घाटिया के कहते ही मानो उनके हृदय में उस बालक के प्रति अपार श्रद्धा-प्रेम उभर पड़ा—बस वहीं से उसका मन-ही-मन स्मरण करने लगी। अब घर पर भी आयी, तो एकमात्र उस बालक का ही स्मरण, उनकी ही याद रखने लगी। संयोग की बात, बाल गोविन्द राय उसी राजा फतहचन्दजी की कोठी में (जो बहुत बड़ा मैदान और बाग था) खेलने जाया करते थे। उनके साथ सैकड़ों मुहल्ले के लड़के होते। सभी को राजा के बगीचे में ले जाते और तरह-तरह की क्रीड़ाएं एवं खेलों का आयोजन करते। उन्हें शस्त्रों का बड़ा शौक था। वह लड़ाई का रिहर्सल करते। लड़कों के दो दल बनाए जाते, एक पक्ष के नायक खुद रहते और दूसरे पक्ष में किसी दूसरे लड़के को बनाते और युद्ध के अनेक तरह के चक्रव्यूह रचते। चक्रव्यूह से निकलने, बचने-बचाने की प्रक्रियाओं का बड़ी संजीदगी के साथ अभ्यास करते। लड़कों में खेल की अभिरुचि स्वाभाविक ही होती है। खूब हिल-मिलकर लड़के खेलते, खाते-खिलाते और उद्धम मचाते रहते थे। मैनी रानी फतहचन्द के भवन और बाग के चारों ओर बालकों का ही जैसे राज्य हो। खूब हो-हल्ला कुहराम लड़के मचाते रहते थे। आज़ादी थी, सब खूब खेलते थे। जब से महारानी विश्वम्भरा को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

घाटिया महाराज ने कहा तब से तो वह उस बालक की छवि देखने को लालयित थी। एक दिन अपने बरामदे से देख लिया उस बालक गोविन्द-राय को। मन तो उनके आकर्षक रूप से मोहित अवश्य हुआ, पर इन्हें सन्तोष कहां —इन्हें तो गोविन्दराय की तरह अपनी सन्तान की अभिलाषा थी। अब महारानी को यह कामना होने लगी कि गोविन्दराय की तरह ही मुझे भी सन्तान होती। पुत्र होता। दर्शन के कई दिनों बाद एक दिन महल में बैठी माता विश्वम्भरा ध्यानमग्न थी कि गोविन्द-राय की तरह मुझे भी बेटा होता—बार-बार यही सोच ही रही थी कि अचानक सामने देखती क्या है कि वह प्रसिद्ध बालक गोविन्द राय दरवाजा खट्-खट् खोलता हुआ दौड़ता आकर मां-मां करता हुआ माता विश्वम्भरा की गोद में जा बैठे और बोले : "मां ! मां ! कुछ खिलाओ मां ! तुम मुझे याद कर रही हो न। मैं आ गया।" गले में लिपट गये गोविन्दराय। माता विश्वम्भरा का मातृ-हृदय गद्गद् हो गया। वह अपनी गोद में पुत्र के अलभ्य सुख से लाभान्वित हो उठी, वह भूल गई सारी चिन्ताएं, पुत्र की आकांक्षाएं, पुत्र की आशाएं। वह तो सचमुच पुत्रवती हो गई। रोम-रोम पुलकित और पुत्र-वात्सल्य से हर्षित हो उठा। उसे ऐसा मालूम हुआ कि वह चिर-सिंचित कामना पा चुकीं। वह गोविन्द को गले लगाए, गोविन्द के प्यार में तल्लीन हो गईं। कुछ होश आया, उन्हें चूमने और प्यार करने लगी। सोहराने लगीं और मस्तक-हाथ-पांव निरखने लगीं, उस अलौकिक बालक गोविन्द को। गोविन्द बोल उठे, 'मां ! मैं ही तो तेरा पुत्र हूँ। तू क्यों इतनी चिन्ता करती है। मैं आ गया माता। मां, कुछ खिला, भूख लगी है।' जैसे घर के बच्चे अपनी मां से खाने की हठ करते हैं, गोविन्दराय उसी तरह करने लगे। भावाभिभूत मां हक्की-बक्की हो गई कि इसे क्या खिलाऊँ। नौकरों को आवाज़ दे बुलाया। इतने में बालक गोविन्द बोल उठे, 'मां, मुझे मिठाइयां नहीं चाहिए, रसोईघर में रखी घुघनी और पूरी जो है, उसे ला दे। रानी विश्वम्भरा आश्चर्यचकित हो गई कि इस चमत्कारिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बालक को घुघनी-पूरी का पता कैसे लगा ? चमत्कार। अपूर्व चमत्कार। माता विश्वम्भरा दौड़कर उठा लाई घुघनी-पूरी और बालक गोविन्द के आगे रख दिया। फिर क्या था, लगे दोनों हाथों खाने और आवाज लड़कों को—'ओ लल्लू ! ओ राम ! दीवानचन्द ! आओ। खाओ घुघनी-पूरी, मेरी मां का प्रसाद है, लगे सब लड़के खाने-पीने। आज माता विश्वम्भरा का आंगन बालकमय हो गया। जिधर देखो, उधर बालक ही बालक। आज का परम पवित्र दिन परम उल्लास का दिन मां के लिए था। माता विश्वम्भरा भूल गई सारी चिन्ताओं को। पुत्र न होने की सारी भावनाएं समाप्त हो गईं। उसकी सारी आकांक्षाएँ पूर्ण हो गईं। नौकर आज्ञा पाते ही टोकरियां मिठाइयां भी ले आए और गुरुजी के सब बाल संगी-साथी किलकारी मार-मार खूब खाये-खेले। इस तरह नित्य का समय गुज़रने लगा। राजा फतहसिंह मैनी के सारे राज्य परिवार में बड़ी खुशी हुई। राजा भी गुरु के प्यार में विभोर रहने लगा। अब क्या था, राजा फतहचन्द का राज-भवन बालक गोविन्दरायजी के बालवृन्दों का क्रीड़ा केन्द्र हो गया। अब महाराज सर्वप्रथम राजा दरबार भी यहीं लगाये। अनेकों खेल-युद्ध की प्रक्रियाओं का अभ्यास कराते रहे। समय गुज़रते देर न लगी। पिता गुरु तेगबहादुरजी की बुलाहट पंजाब से आई। निश्चय हो गया कि बालक गोविन्द पंजाब जाएँगे। यह बात बिजली की तरह चारों ओर फैल गई। महारानी विश्वम्भरा देवी को भी यह बात मालूम हुई। वह अपने धर्म-पुत्र गोविन्दराय को अपने से अलग होता सुनकर अत्यन्त विह्वल, हो उठी। सदा चिंतित रहने लगी। नित्य की तरह बालक गोविन्दराय आकर मां विश्वम्भरा की गोद में बैठ गये और बोले—"मां, तू हमारे लिए क्यों इतनी बेचैन है। मैं तुझसे अलग कभी भी नहीं हो सकता, मैं तो तेरे हृदय, मन, मस्तिष्क के सभी कोने-कोने में रम रहा हूँ। मां, इस संसार में मुझे बहुतेरे कार्य करने हैं। दुखी मानवता का उद्धार करना है, इसलिए मैं जा रहा हूं। तू चिन्ता न कर।" मां गद्-गद् हो आंसू बहाती, बेटा गोविन्दराय का सुन्दर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुख चूमती प्यार करती बोली, "बेटा गोविन्द, मुझसे रहा नहीं जाएगा। मैं जी नहीं सकूँगी। यह छवि, यह मुखरा मुझे कहां मिलने को। किसे मैं पूरी-घुघनी, मिठाइयां खिलाऊंगी ? कहां से ये तुम्हारे साथी बालकवृन्द आएँगे। बेटा ! बेटा !! गोविन्द !" कहते आंसू की धारा बहाने लगी। साक्षात् कृष्ण-स्वरूप श्री गोविन्दराय ने अपनी माया को फेरा और बड़े प्रेम-प्यार के साथ खुद करुणा-द्रवित हो मां के गले लिपट गये, "मां तू विश्वास रख, मैं नित्य तुझे दर्शन दूंगा। तेरे आंगन में नित्य बालकों की मंडली आएगी और उसी में मुझे भी तू पा जाएगी। नित्य घुघनी-पूरी मिठाइयां यहां हमारे सभी साथी बालकों में वितरण किया करना। जब तक इस पृथ्वी पर चांद-सूरज है, तब तक मैं तेरे पास तेरी इस अमर धरती पर नित्य आऊँगा और निहाल करूँगा। सारी दुनियावालों को जिसने तुम्हारी तरह इस सच्चा प्रेम-पन्थ को पहचाना।" गुरु ने माया समेटी और रानी विश्वम्भरा आश्वस्त हो गई। गुरुजी पंजाब चले गये और उस दिन से आज तक पूरी-घुघनी बालकों में बांटे जाते हैं। यह परम्परा आज भी मैनी संगत में चल रही है। यहां उन्होंने खेल-खेल में करौंदे का दतुअन करके गाड़ दिया था, वह स्थान आज भी 'करौंदा साहब' के नाम से वहीं पर है।

इस तरह उस बाल प्रीतम श्री गुरु गोविन्दरायजी की बाल-क्रीड़ा-स्थली सुप्रसिद्ध और परम पावन तीर्थ स्थानों में एक श्रेष्ठ और वरिष्ठ स्मृति-स्थल है, जिसके हरेक रजकण को गौरव है, जिसमें गुरु गोविन्द ठुमुक-ठुमुक कर खेले-खाये, लड़े-भिड़े और सारी धरती गोविन्दमय हो गई। धीरे-धीरे वहां राजसी कामकाज सतोगुणी कार्यों में परिवर्तित होने लगा। गुरु के प्यारे काशी में संस्कृत पढ़ने आने वाले गुरु के निर्मल सन्तों का यहां तक आगमन होने लगा और उनका सम्मान-पूजा मैनी दरबार में होने लगी। धीरे-धीरे समय बदला और इन राजा-रानी दोनों ने अपना सारा राज्य उन विद्वान निर्मल सन्तों को सुपुर्द कर दिया। इतिहास मौन है कि वह सन्त कौन थे, जिन्हें यह सौंपा गया था, उनका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नाम क्या है ? खैर, उस समय से यह गुरुद्वारा मैनी संगत के रूप में परिवर्तित हो गया और निर्मल महापुरुषों की देख-रेख में उसी तरह जैसा कि रानी के समय होता था। उस समय से वही परम्परा चलती रही और आज भी चल रही है। वहां पर नित्य बच्चों में घुघनी-पूरी का वितरण प्रसाद के रूप में होता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री रामजी मिश्र 'मनोहर'

७. गुरुजी का बचपन

सिखों के दसवें गुरु एवं खालसा पंथ के प्रवर्तक श्री गुरु गोविन्दसिंह का जन्म पौष सुदी ७, सम्वत् १७२३ (२६ दिसम्बर १६६६ ई०) को माता गूजरीजी के गर्भ से पटना शहर में हुआ था। उन्होंने अपने जीवन के प्रारम्भिक छः वर्ष पटने में ही व्यतीत किए। इन महान राष्ट्र-नायक एवं अमर साहित्यकार के बाल-जीवन से संबंधित स्थान और स्मृतियाँ आज भी पटना नगर में सुरक्षित हैं। ये स्थान आज देश के ऐतिहासिक तीर्थ-स्थल बन गये हैं, जिन्हें देखने और दर्शन करने आने वाले देशी-विदेशी व्यक्तियों का आज ताँता लगा रहता है। गुरु गोविन्दसिंह का सम्पूर्ण जीवन विवधाताओं और विशालताओं से भरा पड़ा है। उनके जीवन की चमत्कारिता का आभास बालपन से ही मिलने लगा था। जिस प्रकार भगवान कृष्ण के बचपन के चमत्कार को देख लोग आश्चर्य में पड़ जाते थे, उसी प्रकार बाल गोविन्द का बाल-चमत्कार देखकर भी लोग चकित एवं स्तम्भित रह जाते थे।

गुरु गोविन्दसिंह के पिता श्री गुरु तेगबहादुर अपनी पत्नी गूजरी तथा कुछ अन्य शिष्यों के साथ पूर्वी भारत की यात्रा कर रहे थे। इसी रास्ते में उन्होंने अपनी पत्नी को, जो कि गर्भवती थीं, अपने साले श्री कृपालचन्द के साथ पटने में ही छोड़ दिया। उनकी सेवा-सुश्रूषा के लिए कुछ अन्य शिष्य भी यहाँ रह गये। पटना में उनके अनुयायियों एवं भक्तों ने उनके स्वागत तथा माता गूजरी की सेवा के लिए पहले

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से ही तैयारी कर रखी थी। अपने परिवार को इनके संरक्षण में छोड़कर गुरु तेगबहादुर ने पूरब की ओर प्रस्थान किया।

गुरु गोविन्दसिंह ने अपने जन्म-धारण करने के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है :—

तहीं प्रकाश हमारा भयौ।
पटना शहर बिखै भव लयो॥

गुरु गोविन्दसिंह के जन्म तथा बाल-क्रीड़ा से सम्बन्ध रखने वाले मुख्य स्थानों में पटना के श्री तखत हरिमन्दिर, मैनी संगत तथा गुरु गोविन्द घाट का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

अपने नैसर्गिक गुणों से इन्होंने अपने जन्म-काल से ही लोगों को अचंभे में डालना शुरू कर दिया था। इनके व्यक्तित्व के अलौकिक प्रकाश को देखकर जानने वाले सहज ही जान जाते थे कि यह बालक कौन है और इस संसार में क्यों आया है। बताया जाता है कि गुरु गोविन्दसिंहजी के जन्म के समय ही पंजाब के मशहूर सूफी संत श्री भीखन शाह को इलहाम हुआ कि पटना में इस महान आत्मा ने जन्म धारण किया है। कहते हैं कि उस दिन भीखन शाह को पश्चिम के बजाय पूरब की ओर मुँह करके नमाज पढ़ते देखकर उनके अनुयायियों को बड़ा ताज्जुब हुआ। उन्होंने इसका कारण जानने के लिए जिज्ञासा प्रकट की तो शाह ने अपने चेलों को कहा कि आज खुदा का नूर मगरिब के बजाय मशरिक में दिखायी पड़ा है। करनाल स्थित अपने निवास-स्थान से वे अपने अन्य कई शिष्यों के साथ उसी दिन पटने के लिए रवाना हो गये।

लम्बी यात्रा तय कर पटना पहुँचने के बाद उन्होंने जब बालक गोविन्द के दर्शन की आकांक्षा प्रकट की, तो पहले लोग घबड़ाये और बच्चे को नजर-गुजर लगने के डर से उस फकीर को दिखाने में हिचकिचाहट महसूस की। लेकिन जब उनका पूरा परिचय मिला, तो उन्हें नवजात शिशु को, जो कि अभी अपनी मां की गोद से उतरे भी न थे, देखने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की इजाज़त मिली। भीखन शाह ने हवेली में पहुँचते ही बालक गोविन्द का सिजदा किया। उस समय उनके मन में कुछ द्वन्द्व था। इसलिए अपनी जिज्ञासा की शान्ति के लिए एक बरतन में दूध और दूसरे में पानी लेते गये। कथा यह भी है कि एक बर्तन में हिन्दू की दूकान से खरीदी गयी मिठाई और दूसरे में मुसलमान हलवाई की दूकान से खरीदी गयी मिठाई लेते गये। बाल गोविन्द ने किसी एक बर्तन या मिठाई को न छूकर दोनों पर एक ही साथ हाथ रखा। सैयद भीखन शाह इस बात से आश्वस्त होकर वापस लौटे कि खुदा का यह नूर हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों का रहबर होगा।

गुरु गोविन्दसिंह का बचपन का नाम गोविन्दराय था। ये बचपन से ही स्वभाव के बड़े चंचल, मेधावी और सबप्रिय थे। इनकी बाल-सुलभ चपलता और चंचलता से लोगों को बहुधा परेशानी तो होती, परन्तु इनके प्यार के माधुर्य से उनका क्रोध फौरन काफूर हो जाता। सालिसराय की हवेली में इनका जन्म हुआ था, उसके आँगन में एक बड़ा कुआं था, जिसका पानी बड़ा मीठा और सुस्वादु था। मुहल्ले-भर की स्त्रियाँ वहाँ पानी भरने आतीं। बालक गोविन्द ने बैठे-ही-बैठे एक दिन पानी लेकर जाती एक स्त्री के घड़े में कंकरीली मार दी। मिट्टी का घड़ा टूट गया और पानी बहने लगा। उन्हें इस क्रीड़ा में बड़ा मज़ा आया। उन्होंने मिट्टी की गोलियों से घड़ा फोड़ने का क्रम जारी रखा।

अन्ततः परेशान होकर एक दिन उन औरतों के समूह ने माता गूजरी जी से जाकर इस बारे में शिकायत की। माताजी ने मिट्टी के घड़े लेकर आने वाली उन स्त्रियों को ताम्बे-पीतल के घड़े दे दिए। लेकिन तीरन्दाज़ गोविन्द ने अपने तीर-कमान सम्हाल लिए और उनके धातु के घड़ों का शिकार तीरों से करना शुरू कर दिया।

अन्त में तंग आकर मुहल्ले की, औरतों ने नहीं चाहते हुए भी माता जी के पास फिर इस बात की शिकायत की और कहा—"अब तो तुम्हारा लाल तीरकमान चलाता है। कहीं किसी को लग जाए तो क्या हो?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माताजी हैरान रह गयीं। आजिज आकर उन्होंने यह श्राप दिया कि जाओ इस कुएं का पानी ही खारा हो जाएगा। कोई पानी ही लेने नहीं आयेगा जो गोविन्दजी को ऐसा करने का मौका मिले।

माताजी के इस अभिशाप को सुनकर वे स्त्रियाँ बहुत दुखी हुईं और पुनः सामूहिक रूप से मिलकर उनसे अपना अभिशाप वापस लेने का अनुरोध किया।

माताजी ने कहा, "जाओ, यह स्थान एक दिन बहुत बड़ा तीर्थ स्थान बनेगा और जितनी संख्या में यहाँ तीर्थयात्री आएँगे उसी तेजी में इसका पानी मीठा होता जायगा। लोगों की ऐसी धारणा है की सचमुच में इस कुएं का पानी दिनोंदिन मीठा होता जा रहा है।

गुरु गोविन्दसिहजी की गरीबनवाजी, सर्वप्रियता और रणबांकुरापन के अंकुर बचपन से ही दिखायी पड़ने लगे थे। पटना में अपनी अल्प बाल्यावस्था में ही हवेली से बाहर निकल जाते और पास-पड़ौस के अमीर-गरीब और तथाकथित ऊच-नीच सभी वर्ग के समवयस्कों से दोस्ती करते। कभी नदी के किनारे चले जाते और कभी राजा कीरतचन्द मैनी के उपवन में। वहाँ जाकर सभी बालकों को इकट्ठा कर तीर-कमान चलाने की शिक्षा देते और आपस में ही दो दलों में बंटकर लड़ाई-भिड़ाई का अभ्यास करते।

अपने जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बचपन से ही अभ्यास करना और दुष्टों का मुकाबला करने के लिये सैनिकों की टोली तैयार करने का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया था। अपनी जिस प्रतिभा और कौशल का आभास उन्होंने अपने बचपन में दिया था, आगे जाकर उसी का निखार हुआ और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति स्वराष्ट्र एवं स्वधर्म और पीड़ित मानवता की रक्षा के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व होम कर दिया।

गुरु गोविन्दसिह के जन्म-स्थान के बगल में ही राजा फतहचन्द मैनी नाम के एक जमींदार रहते थे। उनकी कोई संतान न थी। अतः

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उनका द्वार पास-पड़ौस के बच्चों के लिए खुला रहता। बालक गोविन्द बच्चों को शास्त्रास्त्र की शिक्षा वहीं देते। राजा मैनी दोनों दम्पति सन्तान के अभाव में बराबर निराश और चिन्तित रहा करते। एक दिन दोनों पति-पत्नी को चिन्तावस्था में देखकर बाल गोविन्द उनकी भावना ताड़ गये और मैनीजी की पत्नी की गोद में हठात् जाकर बैठ गये और कहने लगे : "मां क्या चिन्ता करती हो, मैं तुम्हारा पुत्र हूं। भूख लगी है। कुछ खाने को दो।" मां के आनन्दोल्लास का क्या कहना था। वे फौरन घर में गयीं और हलुआ-घुघनी जो बचा था लाकर उन्हें दिया। तब से आज तक प्रतिदित मैनी संगत गुरुद्वारा में बच्चों को हलुआ और घुघनी प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता है।

कई बीघे के क्षेत्र में फैले इस मैनी संगत गुरुद्वारा को लाखों रुपये लगाकर जीरणोद्धार हो रहा है। इस गुरुद्वारे में बालक गोविन्द के एक पैर का जूता, उनके बचपन के चित्र तथा राजा कीरतचन्द मैनी और उनकी पत्नी के चित्र संग्रहीत हैं। जिस स्थान पर बाल गोविन्द रानी की गोद में बैठे, वह चबूतरा भी अभी तक ज्यों-का-त्यों कायम है। इसके अलावा भी गुरु गोविन्दसिंह के बाल्य-जीवन से सम्बद्ध चीजें सुरक्षित हैं।

गुरु गोविन्दसिंहजी का जिस स्थान पर जन्म हुआ था, वहाँ पर तो आज करीब २५-३० लाख के व्यय से विशाल पाँच मंजिलें गुरुद्वारा भवन का निर्माण किया गया है, जो बिहार में स्थापत्य-कला का एक अद्भुत नमूना है। सालिसराय जौहरी तथा पटना नगरवासियों ने पहले इस स्थान पर जो भवन बनवाया था, उस स्थान पर राजा रणजीतसिंह ने विशाल गुरुद्वारा भवन बनवाया और उसके स्थान पर यह नयी इमारत बनी है। जिस स्थान पर गुरु गोविन्दसिंह का जन्म हुआ था, उसे अभी तक ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रखा गया है। साथ ही उन्होंने घड़े फोड़ने के लिये जिन गोलियों तथा तीरों का इस्तेमाल किया था वे तथा चक्र, कवे, तलवार, खड़ाऊं एवं बचपन के वस्त्र आदि भी संग्रहीत हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बालक गोविन्द के हाथ में सोने का कड़ा था। अपने गरीब बाल-साथियों का हाथ खाली देख बालक गोविन्द को सोने का कड़ा पहनना अच्छा नहीं लगा और एक दिन गगा किनारे खेलते समय कड़े को नदी में फेंक दिया। घर लौटने पर माँ ने पूछा तो कहा कि गंगा में डाल दिया। नदी किनारे लोग गये और गोताखोर के ज़रिये बाला खोजवाने की कोशिश की। गोता लगाकर जब वह बाहर निकला तो कहते हैं कि उसके हाथ में एक ही तरह के बहुत से सोने के कड़े थे। यह कौतुक देखकर सब आश्चर्यान्वित रह गये।

जिस घाट पर बालक गोविन्द खेलने या गंगा नहाने जाते वहीं शिवदत्त शर्मा नाम के एक ब्राह्मण भगवत आराधना में निमग्न रहते। वे मर्यादा पुरषोत्तम रामचन्द्र के भक्त थे। कहते हैं कि बालक गोविन्द ने उन्हें रामचन्द्र के रूप में दर्शन देकर कृतार्थ किया।

बिहार, बंगाल और आसाम की यात्रा समाप्त करते हुए गुरु तेग-बहादुर सीधे पंजाब पहुँच गये। वहाँ पहुँचने पर सम्वत् १७२९ ई० में पटना से अपने परिवार को बुला भेजा। पटना के उनके भक्तों, नागरिकों एवं मित्रों को जब यह खबर मिली तो सभी रो पड़े। विदाई का समाचार सुनकर वहाँ भारी भीड़ इक्ट्ठी हो गयी और लोग अपनी-अपनी ओर से नाना प्रकार की भेंट तथा उपहार लेकर आये। पटना के उनके भक्तों ने उनकी यादगार के लिए माताजी से वह पालना मांग लिया जिसमें बालक गोविन्द झूला करते थे। आज भी वह पंगूरा या पालना जो हरिमंदिरजी में सुरक्षित है जिसके दर्शन कर लोग अपना धन्य भाग्य समझते हैं।

पटना से विदा होकर दानापुर, बक्सर, आगरा, वाराणसी, प्रयाग लखनऊ, मथुरा, थानेश्वर, लखनौर आदि स्थानों से होते हुए वे पंजाब पहुँचे। वे जहाँ-कहीं भी जाते और जहाँ-कहीं भी कुछ देर ठहरते वहाँ लोगों को अपने कौतुक से आश्चर्य में डाल देते। वहाँ के बालकों से दोस्ती कर लेते और उनके दिलों पर अपनी गहरी छाप छोड़ देते।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आनन्दपुर अपने पिता के पास पहुँचने पर उनका नया जीवन प्रारम्भ हुआ। गुरु तेगबहादुर ने उनकी शिक्षा-दीक्षा तथा लालन-पालन का सुन्दर प्रबन्ध किया। यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण के नये आलोक में उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ। कुछ ही समय के अन्दर बालक गोविन्द ने संस्कृत, फारसी तथा गुरु ग्रंथ साहब का ज्ञान सहज ही हासिल कर लिया। अपनी शिक्षा-दीक्षा के बारे में विचित्र नाटक में उन्होंने स्वयं लिखा है :—

किनी अनिक भांति तन रक्षा।
दीनी भांति-भांति की शिक्षा॥

गुर तेगबहादुर जिस समय पंजाब से लौटे उस समय औरंगजेब का अन्याय-अत्याचार पूरे ज़ोर पर था। उसने लोगों को ज़बर्दस्ती धर्म-परिवर्तन कराना प्रारम्भ कर दिया था। काश्मीर के लोग अधिक पीड़ित थे। वहाँ से ब्राह्मणों का प्रतिनिधि मंडल गुरु तेगबहादुर से मिलने आया। प्रतिनिधि मंडल में आये लोगों ने उनसे कहा कि धार्मिक स्वतन्त्रता एवं अपनी संस्कृति की रक्षा के लिये किसी महापुरुष के बलिदान की आवश्यकता है, गुरु तेगबहादुर और काश्मीर से आये पंडित सभी इस मामले को लेकर चिन्ता-निमग्न थे। कहते हैं कि बालक गोविन्द जिसकी उम्र उस समय करीब ९ वर्ष की थी, वहीं पर बैठे वे बातें सुन रहे थे। पिताजी को चिंतित देखकर उन्होंने कहा : "पिताजी इस समय आपसे बढ़कर और कौन महान आत्मा है जो इस काम के लिए बलिदान कर सकता है।"

कहते हैं कि पिता गुरु तेगबहादुर अपने पुत्र की इस दिलेरी से बहुत उत्साहित हुए। उन्होंने उन पंडितों से कहा कि औरंगजेब को जाकर कह दो कि यदि गुरु तेगबहादुर धर्म-परिवर्तन कर लेंगे तो कश्मीर का हर आदमी अपना धर्म बदल देगा।

यह सन्देश सुनने के बाद मुगल सम्राट् ने गुरु तेगबहादुर तथा उनके

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साथियों को तरह-तरह की यातनाएँ देकर उनकी हत्या कर डाली। गुरु तेगबहादुरजी का सिर जहाँ पर काटा गया था, उस स्थान पर दिल्ली में आज गुरुद्वारा शीशगंज के नाम से बड़ा गुरुद्वारा कायम है।

गुरु गोविन्दसिंहजी का जीवन जिन विविधताओं और महानताओं से भरा है उसका आभास उनके बचपन में ही मिलने लगा था। दुनिया के इतिहास में इनके जैसे अपूर्व शौर्य-वीर्य की कहानी कहीं अन्यत्र देखने या सुनने को नहीं मिलती। उनका जीवन और चरित्र न केवल भारतीयों वरन् सम्पूर्ण मानव समाज के लिए अपूर्व प्रेरणा का स्रोत है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री गुरुबचनसिंह 'तालिब'

८. एक महान गुरु

गुरु गोविन्दसिंह के पिता गुरु तेगबहादुर थे, जो सिख धार्मिक परम्परा में नौवें सतगुरु हुए हैं। इनकी वाणी में विराग और प्रभु-भक्ति का रस है। गुरु तेगबहादुर पूरब दिशा से लौटकर पंजाब आये। उनके पुत्र जो पीछे गुरु गोविन्दसिंह कहलाये, बालपन में उनका नाम श्री गोविन्दराय था। जीवन के पहले पाँच-छः वर्ष पटना में ही गंगा के आस-पास बिताये। जब इनकी आयु ९ वर्ष की थी, तो एक विचित्र घटना घाटित हुई। औरंगजेब का राज्य था, जिसके शासन में अन्य धर्मों के विरुद्ध अत्याचार की नीति प्रचलित थी। इस अत्याचार का देश के भिन्न-भिन्न भागों में विरोध होने लगा। पंजाब और कश्मीर में भी इसके प्रतिक्रम के रूप से जनता व्याकुल हुई। उस समय इतिहास में आया है: "गुरु तेगबहादुर जो प्रभु-भक्त और संसार को सत्य का मार्ग दिखलाने वाले थे, बहुत चिन्तातुर हुए। उनकी शिक्षा तो सर्व-मानव मात्र को समानता से देखने की थी। किसी भी सम्प्रदाय के धर्म में आक्षेप करना उनको निंदनीय कर्म प्रतीत हुआ। जनता में उन्होंने प्रभु-प्रेम, विश्वास और दृढ़ संकल्प का प्रचार किया और राज्य की ओर से होने वाले अत्याचार को रोकने के लिये अपनी बलि देने का संकल्प लेकर वे राजधानी दिल्ली और अगरा की तरफ चले। इस संकल्प में उनके पुत्र गोविन्दराय ने जो उस समय ९ वर्ष की, आयु के बालक थे, अपने पिता का समर्थन किया। गुरु तेगबहादुर पर विद्रोह का आरोप लगाकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उनको दिल्ली में शहीद किया गया। उस स्थान पर पवित्र धार्मिक स्थल गुरुद्वारा शीशगंज चांदनी चौक में स्थापित है।"

पिता के शहीद होने के पीछे बालक गोविन्दराय सिख सम्प्रदाय के नये गुरु माने गए। वह उनके जीवन में कठिन परीक्षा का काल था। मानव-मात्र का धार्मिक, आत्मिक और सामाजिक नेतृत्व उस गुरु गद्दी का कर्त्तव्य था, जिस पर गुरु नानक महाराज से लेकर महान पावन व्यक्ति गुरु बैठते आये थे। अपने पूर्व जनों के समान गुरु गोविन्दसिंह भी प्रभु की टेक लेकर वह मार्ग ढूंढने लगे, जिसपर चलकर संसार का कल्याण हो। उन्होंने वर्षों तक ध्यान, अभ्यास और तपस्या करके आत्मिक बल प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त संसार में फैले हुए अत्याचार का अन्त करने के लिये स्वयं और अपने अनुयायियों को योद्धा और वीर बनने की प्रेरणा दी। गुरुजी का विश्वास था कि शक्ति भक्ति से ही पैदा होती है। असल योद्धा वह है, जिसमें आत्मिक बल और निर्भयता के लक्षण हों। जिसको प्रभु पर विश्वास है, वही हर अत्याचारी से लोहा ले सकता है। इस संग्राम में चाहे वह जीते या किसी ऊँचे आदर्श के पालन में अपनी आहुति दे दे, यही जीवन का सर्वोत्तम प्रयोजन है, यही भारत की उत्तम परम्परा है और यही गुरु गोविन्दसिंह की शिक्षा है। इस भाव को उन्होंने परमात्मा के सम्मुख प्रार्थना के रूप में अंकित किया है, जो ब्रजभाषा में है। गुरुजी ने भक्ति-रस और वीर-रस में सुन्दर रचना की है। वह प्रार्थना एक सवैये के रूप में है, जिसका अर्थ है, 'प्रभु मुझको यह वरदान करो कि कभी शुभ कार्य से पीछे नहीं हटूं, सदा मेरे मन में तुम्हारे गुण आचरण करने की इच्छा रहे और तुम्हारे मार्ग में युद्ध करके मैं जीत प्राप्त करूँ। परन्तु यदि आपकी यही इच्छा हो कि मेरे शरीर का आपके मार्ग में ही अन्त हो, तो मैं धर्म-युद्ध करता हुआ ही प्राण त्याग दूं।'

गुरु गोविन्दसिंह ने भारत की सोई हुई शक्ति को जगाया। हमारे देश में वीरता और बल की बहुत कथाएँ प्रचलित हैं, जिसमें देव, आत्मा,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

योद्धा, आसुरी शक्तियों से युद्ध करके उनपर विजय प्राप्त करते हैं। शिव पत्नी दुर्गा या चंडी की पुरातन कथाएँ असुरों का नाश करके देवताओं की रक्षा करने की हैं। इस तरह भगवान राम और भगवान कृष्ण के पापियों और अत्याचारियों से युद्ध की कथा देश-भर में प्रचलित है। गुरु गोविन्दसिंहजी ने अनुभव किया कि इन कथाओं में एक रहस्य है और वह यह है कि प्रत्येक युग और काल में असुरों की शक्तियाँ उठती हैं और उपद्रव मचाकर संसार में पाप और अधर्म का प्रसार करती हैं। इन शक्तियों का नाश करने के लिये प्रभु-भक्तों को शक्ति और निर्भयता से युद्ध क्षेत्र में डटे रहना चाहिए। उन्होंने देशवासियों को संगठित किया।

गुरु गोविन्दसिंह महान सन्त और महान कर्मयोगी थे। जीवन में उन्होंने कभी राज्य और गुरु पद की प्राप्ति की इच्छा नहीं की, बल्कि उनके अपने शब्दों में उनके मन में केवल धर्मयुद्ध की चाह, यही भावना प्रधान थी। भगवान के मार्ग में कर्मयोग का पालन करते हुए उन्होंने महान कष्टों का सामना किया। उनके चारों पुत्र शहीद हो गये। स्वयं वे जंगलों में मारे-मारे फिरते रहे, फौज उनका पीछा करती रही। फिर भी उन्होंने प्रभु-भक्ति और दृढ़ विश्वास के मार्ग को कदाचित् नहीं छोड़ा। यह उनका लक्ष्य मानव मात्र के लिये पथ-प्रदर्शक है।

गुरु गोविन्दसिंह ने चाहे उस समय के शासकों के विरुद्ध तलवार उठाई, परन्तु भिन्न-भिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के बीच सहनशीलता और प्रेम-भाव का प्रचार किया। उनकी वाणी में प्रबल विचार, मानव-धर्म की स्थापना का है। उनके शब्दों में उनके भगवान किसी सम्प्रदाय या जाति का इष्ट नहीं, बल्कि सर्व मानवता का प्रतिपालक है। उसका नाम अल्लाह भी है, राम भी है, और रहीम भी, करतार भी, करीम भी। उसकी पूजा मंदिर में भी होती है और मस्जिद में भी। शंख के नाद से भी और अज़ान की आवाज़ से भी। अनेक व्यक्ति आग से उठने वाली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चिनगारियों, धूल से उठने वाले कणों और जल से उठने वाली तरंगों के समान हैं। भिन्न-भिन्न प्रतीक होते हैं, परन्तु सब एक ही परमात्मा के रूप हैं। सो इनमें घृणा द्वेष, भाव के लिये कोई स्थान नहीं होना चाहिए। न कोई नीचा है और न कोई ऊँचा। भगवान ने सबको एक आँख, नाक, कान आदि देकर पंच तत्त्वों से उसका सृजन किया है। सो कौन उत्तम है और कौन नीच ? यह मानव मात्र के सम्बन्ध में समानता और भ्रातृ-भाव का प्रचार गुरु गोविन्दसिंह के जीवन में, सूर्य के प्रकाश की भाँति चमकता है। उन्हीं भावों के कारण जनता उनके साथ हो चली, जिनको ग्रहण करके अहम् भाव से मानव भाव को प्रेरित करके उठाया, इसी आशय को कवि के शब्दों में यों प्रकट किया है :—

"चिड़ियों से मैं बाज़ लड़ाऊँ।
तबै गोविन्दसिंह नाम कहाऊँ।"

इसका भाव स्पष्ट है। मैं दीनों और गरीबों को बड़े-बड़े अभिमानी सामन्तों के योग्य बना दूंगा, उनमें वह शक्ति जगा दूंगा कि उनमें से दास-भाव निकल जायगा।

गुरु गोविन्दसिंह केवल सिख धर्म के निर्माता ही नहीं, बल्कि उन आदर्शों, के निर्माता हैं, जैसे : सहनशीलता और सार्वजनिक समाज की स्थापना, जिनकी हमारे देश को इस समय भारी आवश्यकता है। वह इस काल के लिये इतना ही महत्त्व रखते हैं, जितना आज से तीन सौ साल पहले के समय के लिये, जब वे शारीरिक रूप में मौजूद थे। उन्होंने मनुष्य को मनुष्य के नाते से ऊँचा उठाया, किसी वंश या जाति के नाते को नहीं। यह भाव जो हमारे इस काल के जनवादी आदर्श से समानता रखता है, उस सुन्दर और पवित्र भारत का सपना है, जो गुरुजी ने आज से तीन सौ वर्ष पहले देखा और जिसको उन्होंने वास्तविक रूप देने का प्रयत्न किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस युग में भी हमारा देश उसी सपने को व्यक्त करने की इच्छा और उसी कर्त्तव्य का पालन कर रहा है। इसीलिये यह कहना बहुत उचित होगा कि गुरु गोविन्दसिंह उन आदर्शों और भावों के निर्माता हैं, जिन पर चलने का हम इस युग में साहस कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रो० आनन्दनारायण शर्मा

९. भारत-धर्म अवतार

कहते हैं, महापुरुषों का आविर्भाव संक्रांति-काल में ही हुआ करता है। यह बात दूसरे देशों के लिए चाहे उतनी खरी न उतरे, लेकिन भारत का इतिहास तो इसका प्रखर-मुखर साक्षी है। बुद्ध और शंकराचार्य से लेकर कबीर, तुलसी, गोविंदसिंह और गांधी तक इस स्थापना को रेखांकित करते हैं। इनमें भी गुरु साहब विलक्षण महापुरुष थे। एक वाक्य में, वे भारत-धर्म के अवतार थे। शस्त्र और शास्त्र मानव-जीवन की सिद्धि के दो प्रमुख साधन हैं, इनमें से किसी एक के अभाव में जीवन एकांगी हो जाता है। शास्त्र जहां असफल रहते हैं, वहां शस्त्र की अपेक्षा होती है। ठीक इसके विपरीत, कभी-कभी शस्त्र को शास्त्र के नैतिक समर्थन की जरूरत पड़ती है। परशुराम, राम और कृष्ण के व्यक्तित्वों में हमें इसी शस्त्र और शास्त्र की समन्वित शक्ति के दर्शन होते हैं। मध्य युग में इन दोनों का संतुलन छिन्न-भिन्न हो गया था। इसीलिए देश को राजनीतिक पराधीनता और नैतिक पतन के अभूतपूर्व दृश्य देखने पड़े। गुरु गोविंद-सिंह ने अन्याय, अत्याचार और चतुर्मुख ह्रास की वेला में उत्पन्न होकर इस समन्वय को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने व्यक्तित्व द्वारा परशुराम की उस परिकल्पना को फिर से साकार कर दिय—'मुख में वेद, पीठ पर तरकस, कर में कठिन कुठार।' अतएव उन्हें भारत-धर्म का प्रतीक पुरुष मानना उचित ही है।

गुरु गोविंदसिंह ने अल्पायु में ही शास्त्रज्ञान के साथ शस्त्रज्ञान में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी दक्षता प्राप्त की। खासकर तीर चलाने और निशानेबाजी का उन्होंने पूरी तरह अभ्यास किया। चढ़ावे के रूप में धन के स्थान पर घोड़े तथा शस्त्र भेजने का आदेश तो गुरु हरगोविंद के समय ही जारी किया जा चुका था, गोविंदसिंह ने एक छोटी-सी पर पूर्ण प्रशिक्षित सेना संगठित की और लोहगढ़, केशगढ़, आनंदगढ़ एवं फतेहगढ़ में चार किले बनवाए। मगर इन सबसे बड़ा जो काम उन्होंने किया, वह था 'खालसा-पंथ' का प्रवर्तन। आनंदपुर में गुरु हरगोविंद की शाही फौज पर पहली विजय के उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष वैशाखी का मेला लगा करता था। १६९९ ई० में गुरु ने वैशाखी मेले में एक टीले पर कनात खड़ी करवायी। उसमें पहले से कुछ बकरे बांध दिए गए थे। उन्होंने मेले में आए लोगों को कनात के बाहर एकत्र कर पूछा—"चंडी बलिदान चाहती है। तुममें से कौन धर्म की रक्षा के लिए आत्म-बलिदान देगा?"

गुरु की ललकार सुनकर एक व्यक्ति उठा। गुरु उसे भीतर ले गए और एक बकरे का सिर काटकर रक्तरंजित तलवार हाथ में लिए बाहर निकले। पुनः उन्होंने अपना वही प्रश्न दुहराया। फिर एक व्यक्ति उठा। गुरु उसे भी अन्दर ले गए। इस तरह पांच आदमी बारी-बारी से उठे। अंत में, गुरु गोविन्दसिंह ने उन पांचों को उपस्थित जनसमूह के सामने जीवित लाकर खड़ा कर दिया।

इन पांच व्यक्तियों पर उन्होंने खुद तलवार की नोक से पवित्र जल का छिड़काव कर इन्हें पंथ में दीक्षित किया और स्वयं भी इनसे दीक्षा ली। ये पांचों व्यक्ति 'पंच प्यारे' कहे जाते हैं और इनसे ही 'खालसा पंथ' अर्थात् धर्म के शुद्ध मार्ग का प्रारम्भ माना जाता है। ये पांच व्यक्ति थे—लाहौर के दयाराम, बीदर के साहिबचंद, दिल्ली के धर्मदास, द्वारका के मुहकमचंद और जगन्नाथपुरी के हिम्मत। ध्यान देने की बात यह है कि इन पांच व्यक्तियों में चार तथाकथित छोटी जात के थे। दूसरा संयोग यह कि जैसा ऊपर के विवरण से स्पष्ट है, ये देश के भिन्न-भिन्न भागों से आए थे, जिसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि खालसा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पंथ को जन्म के साथ ही सार्वदेशिक रूप प्राप्त हो गया। गुरु ने इस पंथ के अनुयायियों के लिए 'पंच ककार' (केश, कंघा, कच्छा, कड़ा और कृपाण) अनिवार्य बना दिए और सबको 'सिंह' की उपाधि धारण करने की आज्ञा दी। साथ ही, वे स्वयं भी गोविन्दराय से गोविन्दसिंह बन गए।

स्वाभाविक था कि गुरु गोविन्दसिंह की इस संगठन-शीलता और सामरिक तैयारियों से आसपास के छोटे-छोटे पहाड़ी राजे चौकन्ने होते। पहले उन लोगों ने आपस में मिलकर गुरु को कुचलना चाहा। मगर जब उसमें सफलता नहीं मिली तो मुगल सल्तनत की मदद मांगी। औरंगजेब उन दिनों दक्षिण में मराठों को सर करने में व्यस्त था। इसी-लिए वह खुद तो नहीं आया, लेकिन उसने एक बड़ी फौज गुरु की ताकत तोड़ने के लिये भेज दी। सरहिंद, लाहौर और जम्मू के सूबेदारों के अतिरिक्त कई पड़ोसी राजाओं ने भी इस फौज का साथ दिया और आनन्दपुर को घेर लिया गया। आठ महीने तक घेरा पड़ा। गुरु ने बड़ी बहादुरी से इस सम्मिलित सेना का सामना किया। मगर रसद चुक जाने और पानी का भी टोटा पड़ जाने के कारण उन्हें आनन्दपुर छोड़ने पर बाध्य होना पड़ा। उन्होंने अनेक बहुमूल्य सामग्री सिखों में बांट दी और केवल थोड़ी-सी चीजें लेकर अपने इने-गिने विश्वस्त अनुचरों के साथ भाग निकले। इसी दुर्ग छोड़ने के सिलसिले में उनके दो छोटे बच्चे जोरावरसिंह (९ वर्ष) और फतहसिंह (७ वर्ष) पीछे छूट गए, जिन्हें एक विश्वासघाती ने धन के लोभ से सरहिंद के सूबेदार वजीर खां के हवाले कर दिया। वजीर खां ने उन तेजस्वी बच्चों से इस्लाम कबूल करवाना चाहा। मगर उनके इन्कार करने पर २७ दिसंबर १७०४ ई० को उन्हें जिन्दा दीवाल में चुनवा दिया। गुरु गोविन्दसिंह के दोनों बड़े लड़के अजीतसिंह और जुझारसिंह भी मुगलों के साथ युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए।

गुरु गोविन्दसिंह आनन्दपुर से हटने के बाद काफी दिनों तक इधर-उधर भटकते रहे। उन्होंने कुछ समय माछीवाड़ा के घने जंगलों में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बिताया; फिर जतपुरा, दीना, खिडराना आदि स्थानों को होते हुए तलवंडी साबू 'दमदमा' पहुँचे। इस बीच उन्होंने बहुत अधिक संख्या में अपने शिष्य और अनुयायी बनाए और उनकी सहायता से अनेक छोटी-मोटी लड़ाइयों में शाही फौज को शिकस्त दी। १७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु हो गई। उसके मरने पर राज्य सिंहासन के लिए उसके—बेटों मुअज्जम और आजम में संघर्ष हुआ। गुरु की सहानुभूति बड़े लड़के मुअज्जम के साथ थी। अतएव, जब वह जाजऊ की लड़ाई में आजम को हराकर बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा, तो उसने न केवल गुरु के साथ अपनी खानदानी दुश्मनी को भुला दिया, बल्कि बुलाकर उनका स्वागत किया और खिलअत दी। बहादुरशाह में अपने पिता की भांति धार्मिक कट्टरता नहीं थी। इसलिए गुरु ने भी उसके साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थापित कर लिया।

गुरु गोविन्दसिंह की मृत्यु लगभग बयालिस वर्ष की उम्र में ७ अक्टूबर १७०८ ई० को गोदावरी तट पर बसे नान्देड़ नामक स्थान में हुई। बताया जाता है कि गुरु शाही सेना के साथ दक्षिण जा रहे थे, मगर बीच में नान्देड़ पहुँचकर कुछ दिनों के लिए रुक गए। यहीं उन्होंने माधोदास नामक एक व्यक्ति को दीक्षा दी, जो आगे चलकर 'बंदा बहादुर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और मुसलमानों के लिए आतंक का कारण बना।

एक दिन संध्या समय गुरु विश्राम कर रहे थे, तभी एक पठान ने, जिसे शायद सरहिन्द के सूबेदार वजीर खाँ ने उकसाया था और जो कई दिनों से घात लगाए था, मौका देखकर उनपर छुरे से वार किया। गुरु ने उस पठान का तो उसी वक्त काम तमाम कर दिया, लेकिन उन्हें जो घाव लगा, वह सांघातिक सिद्ध हुआ। कुछ लोगों का कहना है कि घाव करीब-करीब भर चुका था, पर उसी समय उनके सामने एक ऐसा धनुष आया, जिसकी डोरी किसी से चढ़ नहीं रही थी। गुरु ने धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा तो दी, मगर जोर पड़ने से घाव का टाँका टूट गया और खून की धारा बह निकली। मृत्यु के समय 'ग्रन्थ साहब' को सामने रख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर उन्होंने अपने शिष्यों को उपदेश दिया—"आज से गुरुओं की परम्परा समाप्त होती है। मेरे बाद गुरु के स्थान पर 'ग्रन्थ साहब' ही पूज्य समझे जायेंगे और इनके वचनों का पालन प्रत्येक सिख का कर्त्तव्य होगा।"

गोविन्दसिंह ने जिस प्रकार अपने कृतित्व द्वारा उत्तर भारत को संगठित करने का आयोजन किया, उनकी जीवन-लीला का पटाक्षेप भी तदनुरूप हुआ। उनका आविर्भाव पटना (देश के पूर्वी अंचल) में हुआ था, उनका कार्यक्षेत्र प्रमुख रूप से पंजाब (पश्चिमी अंचल) रहा और उनका अवसान नान्देड़ (दक्षिण) में हुआ। इस प्रकार उनका सम्पूर्ण जीवन मानो देश की भौतिक-आध्यात्मिक शक्ति, भौगोलिक एकता एवं सांस्कृतिक गरिमा का प्रतीक था।

सिख-पंथ का आविर्भाव हिन्दुत्व और इस्लाम के सम्पर्क के परिणाम-स्वरूप हुआ था। कबीर के समान ही नानक भी इस धार्मिक संघर्ष और समन्वय की सन्तान थे। नानक ने अपने मत के प्रवर्त्तन में उन्हीं मूल बातों पर जोर दिया था, जिसका न अद्वैत सिद्धान्त से विरोध है और न शरीअत से। प्रारम्भ में नानक के चेलों में हिन्दुओं के साथ मुसलमानों की भी अच्छी खासी संख्या थी। पर परवर्त्ती मुगल-शासकों की अदूरदर्शिता और धर्मान्धता के कारण सिखों का मुसलमानों से विरोध ठन गया। गुरु गोविन्दसिंह के समय यह विरोध अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। इसी का परिणाम था कि गुरु ने सारे संगठन को युद्धित्सु रूप दे दिया। लेकिन यह तलवार उन्होंने इस्लाम के प्रति अपने बद्धमूल वैर के कारण नहीं, लाचारी की हालत में उठाई थी। औरंगजेब को लिखे गए उनके फारसी पत्र, 'ज़फरनामा' का एक शेर है :—

चुकार अज हमह हीलते दर गुजश्त।
हलालस्तु बुरदन शमशेर दस्त॥

यानी 'जब नीति के अन्य साधन असफल हो जाएँ, तो तलवार का सहारा लेना सभी तरह से जायज़ है।' इतिहास गवाह है कि सिखों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और खासकर दसवें गुरु को कृपाण की मूठ, नीति के अन्य साधनों के असफल होने पर ही पकड़नी पड़ी थी।

गुरु गोविन्दसिंह की दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने इस्लामी आक्रमण के खिलाफ तलवार भी उठाई और युद्ध का दर्शन भी पढ़ा। दिनकरजी ने उनके कृतित्व के इस पहलू पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"धर्मयुद्ध की परिभाषा है वह युद्ध, जिसे मनुष्य को आत्मरक्षा के लिए लड़ना पड़ता है। सिक्ख लड़ाई नहीं चाहते थे। लड़ाई उनपर जबर्दस्ती लादी गई थी। इसलिए, सिक्ख-सम्प्रदाय से ऐसे गुरु निकल आए, जिन्होंने युद्ध को धर्म से समन्वित कर दिया। आत्मरक्षा में लड़ाइयां तो राणा प्रताप और शिवाजी ने भी लड़ीं, परन्तु वे युद्ध का दर्शन नहीं गढ़ सके। सिक्खों ने दर्शन भी गढ़ा और खिलाफत जैसा एक संगठन भी बनाया जिससे एक ही व्यक्ति सारे सम्प्रदाय का राजा और गुरु दोनों होता था।"

(संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४०४)

इस युद्ध का दर्शन गढ़ने के लिए ही गुरु ने तलवार के साथ कलम का सहारा लिया। गुरु गोविन्दसिंह के योद्धा और धर्म-गुरु वाले रूप के नीचे उनका साहित्यिक व्यक्तित्व कुछ दब-सा गया है। लेकिन, दरअसल, वे एक वीर सैनिक, धर्मनेता, समाज-सुधारक और साहित्यकार सब कुछ थे, और कहना कठिन है, इनमें उनका कौन-सा रूप अधिक प्रबल था। गुरु गोविन्दसिंह ने केवल बयालीस वर्ष की आयु पाई थी। इसमें भी उनके जीवन का अधिकांश लड़ाई-भिड़ाई में बीता। फिर भी उनकी लिखी हुई अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं। गुरुजी की रचनाओं का संग्रह 'दशम ग्रन्थ' के नाम से हुआ है। यह सिखों के लिये 'आदि ग्रन्थ' के समान ही पूज्य पुस्तक है। गोविन्दसिंह स्वयं एक कुशल कवि होने के साथ कवियों के उदार आश्रयदाता भी थे।

गुरु गोविन्दसिंह ने अपने अनुयायियों में यह विश्वास भरा कि वे जो युद्ध कर रहे हैं, वह धर्म की रक्षा का युद्ध है, एतदर्थ जीवन का सबसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बड़ा पुण्य कर्म है। तीर और खड्ग उठाकर वे वस्तुतः ईशोपासना ही कर रहे हैं। इसके लिए उन्होंने अपने प्राचीन वाङ्मय से चुने हुए प्रेरक अंशों को छांटकर या तो स्वयं उनका भाषानुवाद किया अथवा अपने दरबारी कवियों से करवाया। सामान्य जनता के मानसिक संगठन का यह अभूतपूर्व आयोजन था। यों, उन्होंने उस ढंग की रचनाएँ भी लिखी हैं, जिनको प्रायः 'संत-साहित्य' की संज्ञा दी जाती है और जिनमें सदाचार, समता, अपरिग्रह, जीवदया आदि बातों पर जोर दिया गया है। किन्तु, वे संसार को मिथ्या नहीं मानते थे, न घर छोड़कर जंगल में धूनी रमाने में उनका विश्वास था। इसीलिए साधना को निर्विघ्न चलाने के लिए पहले संसार से विषमता और अन्याय का उच्छेद उन्होंने आवश्यक समझा। इस दृष्टि से वे नानक के वचन—'मम करतार मांहि और कर है किरत मांहि' के आदर्श उदाहरण थे।

गुरु गोविन्दसिंहजी की पूरे इस्लाम से शत्रुता नहीं थी। उनकी लड़ाई प्रधान रूप से तुर्कों की धर्मान्धता प्रेरित राजनीति से थी। मुसलमानों में जो लोग उदार और न्यायप्रिय थे, गुरु ने उनका आदर किया। मुसलमानों में भी बहुतों ने समय-समय उनका साथ देकर अपने ही धर्मावलंबियों का विरोध किया। जिस समय वजीर खां ने गुरु-पुत्रों को दीवाल में चुनवाया था, उस समय मलेरकोटला के मुसलमान नवाब ने शक्ति-भर इस पाशविकता का प्रतिरोध किया था। इसी तरह जब गुरु माछीवाड़ा के बीहड़ जंगलों में भटक रहे थे, दो पठानों—नबी खां और गनी खां—ने खुद जोखम उठाकर उनके प्राणों की रक्षा की थी। इन्होंने गुरु को मुसलमान फकीरों की पोशाक पहनाकर उनकी पालकी ढोई। जब बादशाही फौज की एक टुकड़ी ने इन्हें टोका, तो इन्होंने गुरु को 'उच्च का पीर' कहकर उनका परिचय दिया, जिसके दोनों ही अर्थ होते हैं—ऊँचा पीर और उच्च (मुलतान के निकट) नामक धर्मस्थान का पीर। बहादुरशाह से उनकी मित्रता इतिहास में प्रसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हिन्दुत्व के तो वे अनन्य समर्थक थे ही। यद्यपि सिख-पंथ अवतार-वाद का निषेध करता है, पर 'चंडी चरित्र', 'गोविन्द रामायण', 'कृष्णा-वतार' हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति गुरु की श्रद्धा के मुखर प्रमाण हैं। कहते हैं, उन्होंने वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि के भी अनुवाद कराए थे। (उत्तरी भारत की संत-परम्परा—पृ० ३३४) गुरु तेगबहादुर का बलिदान हिन्दुत्व की रक्षा के निमित्त हुआ था और गुरु गोविन्दसिंह ने अपना सारा जीवन उस धर्म की सेवा में समर्पित किया, जिसका एक खूँट वेदान्त से बंधा है। उन्होंने मूलतः सिख-पन्थ को हिन्दुत्व से अभिन्न समझा।

गुरु साहब की समन्वयशीलता भाषा के क्षेत्र में और भी स्पष्ट है। गोविन्दसिंहजी की पारिवारिक भाषा पंजाबी थी। उनके पूर्व के गुरुओं का साहित्य भी प्रधानतः पंजाबी मिश्रित हिन्दी में है। गुरु ने इस भाषा को तो मान दिया ही, इसके अतिरिक्त उन्होंने ब्रजभाषा का भी सहज भाव से प्रयोग किया। 'चंडी चरित्र' में ब्रजभाषा का निखरा रूप मिलता है। इतना ही नहीं, उन्होंने फारसी का भी अध्ययन किया था। 'ज़फरनामा' और 'हिकायतनामा' उनकी फारसी की रचनाएँ हैं। उनकी कृतियों को देखकर यह आसानी से कहा जा सकता है कि उनका दृष्टिकोण सच्चे अनिषेध का था। उनका किसी भी भाषा से विरोध नहीं था। वे मानव-मात्र की एकता के विश्वासी थे। 'दशम ग्रन्थ' में गुरु साहब का वचन है :—

"कोऊ भयो मुड़िया सन्यासी कोऊ जोगी भयो,
कोऊ ब्रह्मचारी कोउस जति अनुमानबो।
हिन्दू तुरुक कोउ राफजी इमाम शाफी
मानस की जात सबै एकै पहचानबो।
करता करीम सोई राजक रहीम ओई
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक ही की सेव सब ही को गुरुदेव एक
एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो ।।"

गुरु के इस आदेश में पूरी आस्था और इसका निष्ठापूर्वक पालन ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रो० सुदेश भाटिया

१०. साधक कवि

गुरु गोविन्दसिंहजी के दो रूप हमारे यहाँ प्रचलित हैं—एक वीर योद्धा का रूप और दूसरा साधक कवि का रूप। गुरु नानकदेवजी ने जिस परम्परा का श्रीगणेश किया, उसे नयी धारा की ओर प्रवृत्त करने का श्रेय दशम गुरु गोविन्दसिंहजी को ही है। आपने तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए ब्रह्म, जीव, जगत् आदि आध्यात्मिक विषयों पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं।

आपकी रचनाओं का संग्रह 'दशम ग्रन्थ' में हुआ। इस ग्रन्थ में हिन्दी, पंजाबी तथा फारसी की रचनाएँ संगृहीत हैं।

भक्ति-भावना आपके व्यक्तित्व का अभिन्नतम अंग होने के कारण रचनाओं में भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में दृष्टिगत होती है। विचित्र नाटक, ज्ञान प्रबोध तथा चरित्रोपाख्यान के मंगलाचरण आपकी भक्ति-भावना पर सम्यक् प्रकाश डालते हैं और चण्डी चरित्र तथा चरित्रोपाख्यान की समाप्ति ब्रह्म के गुणानुवाद के साथ हुई है।

अन्य गुरुओं की भांति अपने भी निर्गुण, निराकार और निर्विकल्प ब्रह्म की उपासना की है, उसी एक ओंकार को सत्य माना है, जो गुरु नानकदेव के शब्दों में कर्त्ता पुरुष, निर्भय, निर्वैर, अकाल मूरति और अजोनी संभ है। जीवन और ब्रह्म की एकता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं :—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हरि हरिजन दुइ एक हैं
बिम्ब विचार कछु नाहिं
जल तै उपजि तरंग ज्यों
जल ही बिखे समाहि।

समस्त सृष्टि में उन्हें ईश्वर ही दृष्टिगोचर होता है। 'जत्र-तत्र दिसा विसा हुए फेलिओ अनुराग' कहकर वे अपने इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं, किन्तु उनका निर्गुण ब्रह्म यत्र-तत्र सगुण के रूप में भी गृहीत हुआ है। जाप साहब में वे ब्रह्म को 'रूप रंग अरु रेख भेख' से रहित कहते हैं,। 'चक्र चिह्न अरु बरन जात अरु पात नहिन जिह। रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकत किह।'

किन्तु इसी कवित्त की कुछ पंक्तियों से ऐसा संकेत मिलता है कि वह निर्गुण होता हुआ भी सगुण है :—

'कि अवधूत बरनै, कि विभूत करने' और
'आजान बाहु, एकै सदाहु।'

'अकाल उस्तुति' में भी ब्रह्म को अद्वैत, अलख, अवरण और अविकार कहकर सम्बोधित किया गया है, किन्तु निराकार के साथ-साथ साकार भी माना गया है :—

'कहूँ गीत के गवैया, कहूं बन के बजैया ।
कहूं निरत के नचैया, कहूँ नर के आकार हो।'

'ज्ञान प्रबोध' तथा 'विचित्र नाटक' के मंगलाचरण भी निर्गुण की स्तुति करते हुए सगुण की ओर संकेत करते हैं। वस्तुतः उन्होंने रहस्यवाद का समर्थन करते हुए निराकार का साकारवत् वर्णन किया है। यही कारण है कि उन्होंने चौबीस अवतारों की कथा बड़ी ही तन्मयता से कही है। राम और कृष्ण की जीवन-कथा के प्रति उन्हें उतनी ही श्रद्धा है, जितनी किसी वैष्णव भक्त को हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु गोविन्दसिंहजी की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने अपने इष्टदेव की कल्पना अन्य गुरुओं से भिन्न प्रकार से की। जहाँ अन्य भक्त कवियों ने अपने-आपको नारी और ब्रह्म को पुरुष मानकर नारी भाव से आराधना की, वहाँ इन्होंने दास्य भाव से आत्म-निवेदन किया और अपने इष्टदेव को श्रीकाल, महाकाल आदि कहकर संबोधित किया।

'जाप साहब' में महाकाल को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है। जहाँ उसे गीत, तान, नृत्य, नाद, राग और प्रीति की संज्ञा देकर नमस्कार किया है, वहाँ उसके उग्र रूप का भी चित्रण है।

गुरुजी ने उनके इस रूप को इन शब्दों में नमस्कार किया है :—

नमो शस्त्र पाणे। नमो अस्त्र माणे।
नमो परम ज्ञाता। नमो लोक माता।
गरब गंजन सरब भंजन।
नमो जुद्ध जुद्धे।
नमो कलह कर्त्ता।
नमो नित नारायणे क्रूर कर्मे।

गीता के ग्यारहवें अध्याय के बत्तीसवें श्लोक में अर्जुन के मोह को दूर करने के लिये भगवान कृष्ण ने ब्रह्म के इसी संहारकारी स्वरूप का वर्णन किया है—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः
ऋतुऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः।

अर्थात्, हे अर्जुन ! मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूं, इस समय इन लोकों को नष्ट करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ, इसलिए जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित हुए योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करने से भी इन सबका नाश हो जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु गोविन्दसिंह भक्त रूप में माला के साथ-साथ तलवार धारण करने के भी हिमायती हैं, भक्ति के साथ-साथ तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों पर विजय पाने के भी पक्षपाती हैं। यही कारण है कि जहाँ उन्होंने ब्रह्म के शान्त सौम्य रूप का चित्रण किया है, वहाँ उसके प्रलय-कारी वीभत्स रूप की भी कल्पना की है :—

करं बाम चाप्यं कृपाणं करालं
महातेज तेजं बिराजै बिसालं
महादाढ दाढं सु सोहं अपारं
जिनै चरवीयं जीव जग्यं हजारं ।
डमा डम्म डमरू सितासेत छत्रं ।
हाहा हूहू हासं झमा झम्म अत्रं ।
महाघोर सब्दं वजै संख ऐसं
प्रलै काल के काल की ज्वाल जैसं !

वस्तुत: उनके हृदय में जो आकर्षण महाकाल अथवा भगवती चंडिका के प्रति है, वह किसी और देवी-देवता के प्रति नहीं। वे भगवती चंडिका से वरदान मांगते हुए कहते हैं:—

'देहु सिवा वर मोहि इहै
सुभ करमन ते कबहूं न टरौं।'

महाकाल का वर्णन सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में हुआ है। सगुण होकर भी वह अवतार नहीं। विष्णु अवतार रूप में राम और कृष्ण का अभिधान धारण करते हैं, महाकाल निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में ही महाकाल है। राम और कृष्ण की कथा का श्रद्धापूर्वक बखान करते हुए भी वे उन्हें इष्ट रूप में स्वीकार न कर सके। उनके इष्ट तो महाकाल, श्रीकाल अथवा चंडी ही हैं। उदाहरणार्थ हम उनकी कुछ पंक्तियां देखें :—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं न गनेसहि प्रियतम मनाऊँ
किसन बिसन कबहूं न ध्याऊँ
कान सुने पहचान न तिन सौं
लिव लागी मोरी पग इन सौं
महाकाल रखवार हमारो।
महालौह में किंकर थारो।
अपना जन्न करो रखवार।
बांह गहै की लाज विचार।

गुरु गोविन्दसिंहजी ने श्रीकाल के भैरव रूप का चित्रण किया है और उसे ही इष्टदेव मानकर उसकी उपासना की है, लेकिन उनका महाकाल अवतार न होकर भी अवतार के निकट है। वे उसे अवतार नहीं कहते। उसका भिन्न नाम, धाम नहीं। उसका कोई सांसारिक माता-पिता नहीं। न वह जन्म लेता है, न बाल-क्रीड़ायें करता है और न मृत्यु को प्राप्त होता है। इस रूप में वह अवतार नहीं, किन्तु भू-भार उतारने के लिये धरती पर प्रकट होता है और अपने हाथों से दुष्टों का संहार करता है। ईश्वर का रुद्र रूप में वर्णन उनके द्वारा संचालित युद्ध-कर्म का परिणाम है। वे भगवती चंडिका से अपनी विजय और शत्रुओं की पराजय का वरदान मांगते हैं :—

'न डरौं अरि सों जब जाइ लरौं।
निसचै कर अपनी जीत करौं।।'

अपने शिष्यों की रक्षा और शत्रुओं के विनाश के लिए प्रार्थना करते हैं :—

'पुनि-पुनि शत्रु हमारे धावहु
आप हाथ दे मोहि बचावहु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुखी बसे मोरो दरिबारा
सेवक सिख्य सभै करतारा।'

तुलसी के राम और सूर के कृष्ण से भिन्न गुरु गोविन्दसिहजी के श्रीकाल पक्षपाती प्रतीत होते हैं। राम और कृष्ण का रावण और कंस से कलह होने का निजी कारण है। रावण, राम का निजी शत्रु है और कंस कृष्ण का, किन्तु महाकाल का कोई निजी शत्रु नहीं। तुलसी अपने निजी शत्रुओं के विनाश के लिये राम से प्रार्थना नहीं करते और न सूर अपने निजी शत्रुओं के अहित हेतु कृष्ण की उपासना करते हैं; किन्तु गुरु गोविन्दसिह का सर्वकाल उन्हें युद्ध में सहायता देता है, उनके शिष्यों की भलाई के लिए प्रवृत्त है और उनके परिवार को बांह का सहारा देता है। ऐसी कल्पना भारतीय साहित्य में पौराणिक अवतारों में दृष्टिगोचर होती है। पौराणिक अवतार भी देवताओं को भलाई के लिये और असुरों के सहारे के लिये ही संसार में जन्म ग्रहण करते हैं। उस परम्परा का पालन करते हुए चौबीस अवतार वर्णन में आपने अवतार पुरुषों और देवताओं के पक्ष में और असुरों के विपक्ष में युद्ध करते हुए दिखाया है। उन्होंने अपने-आपको अवतार न कहकर परम पुरुष का दास अथवा कीट ही कहा है, किन्तु परम पुरुष ने उन्हें भी इसी उद्देश्य के लिये भेजा है, जिसके लिये वह अन्य अवतारों को भेजता रहा है :—

'हम इह काज जगत मों आए।
धरम हेतु गुरुदेव पठाए॥
जहां-तहां तुम धरम बियारो।
दुष्ट देखियत पकरि पछारो॥'

ठीक इसी प्रकार गुरु गोविन्दसिहजी भी कहते हैं:—

'कहा भयो दोऊ लोचन मूंद के बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो।
न्हात फिर्‌यो लिए सात समुन्दन लोक गयो परलोक गवायो॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वे ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रेम को महत्त्व प्रदान करते हैं। उनकी दृष्टि में साधना का मार्ग मूर्ति पूजा नहीं, बल्कि वह तो प्रेम ही है। इस लिए वे प्रेम को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए कहते हैं :—

'साच कहूं सुन लेहु सभै,
जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभु पायो।'

काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने भक्ति-काव्य को चमत्कारवादी प्रवृत्ति से सर्वथा अलग रखा है। अनुभूति की तीव्रता और भावाभिव्यक्ति की विह्वलता का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण उनका यह पंजाबी पद है :—

'मित्र प्यारे नूं हाल मुरीदां दा कहणा।
तुध बिन रोगु रजाइयां दा ओढण
नाग निवासा दे रहणा
सूल सुराही खंजर प्याला
बिंग कसाइयां दा सहणा।

अतः यहाँ उनका निजी काम नहीं।

गुरु गोविन्दसिंहजी मूलतः भक्त कवि हैं। ब्रह्म के साथ उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध है। वे ईसा मसीह की भांति अपने-आपको ईश्वर का पुत्र मानते हैं, जो एक विशिष्ट आज्ञा का पालन करने के लिये संसार में भेजे गये हैं।

उनकी ईश-भावना की अभिव्यक्ति के प्रमुख भाव हैं—रति, उत्साह विस्मय और निर्वेद। वस्तुतः उन्होंने अपनी भक्ति के आलम्बन की कल्पना स्नेह प्रतिमा अथवा वीर प्रतिमा के रूप में ही की है।

उनकी दृष्टि अपने इष्टदेव की करुणा, दया, दान आदि पर आधारित है। उन्होंने उसे सूक्ष्म उपमानों द्वारा बड़ा ही ललित व्यक्तित्व देने का प्रयत्न किया है :—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'कहूँ गीत नाद के निदान को बनावत हो,
कहूँ नृतघारी चित्रकारी के निधान हो।
कहूं पयूख हुइके पीवत विषादत हो,
कहूं मयोख ऊख कहूँ मदवान हो।'

काव्य-कला, नृत्य-कला, संगीत-कला और चित्रकला की शब्दावली का प्रयोग भी वे अपने आराध्य के रूप-चित्रण में करते हैं।

गुरु नानकदेव की भांति इन्होने बाह्याडम्बरयुक्त मूर्ति-पूजा तथा तीर्थयात्रा आदि की निन्दा की है। गुरु नानकदेव ने 'आसा दी वार' में कहा है :—

'पड़ि पुसतक संधिना बदं। सिल पूजसि बगुल समाधं।
मुखि झूठ बिभूखण सारं। त्रैपाल तिहाल विचारं।'

यारडे दा सानूं सत्थर चंगा,
भट्ठ खेडियां दा रहणा।'

तात्पर्य यह है कि मेरे प्रिय मित्र को मुझ दीन-हीन की दशा कह सुनाना। कहना कि तेरे बिना रजाई का ओढ़ना रोग के समान और महल में रहना सर्प-संगति के समान प्रतीत होता है। सुराही, शूल-सी, प्याला खंजर-सा और काव्य कसाई-सा प्रतीत होता है।

पौराणिक प्रबन्धों में भी ईश-वन्दना तथा चंडी-स्तुति के प्रसंगों में उनकी चमत्कारवादी प्रवृत्ति पर अंकुश लगा हुआ प्रतीत होता है। वस्तुतः साधक कवि के दृष्टिकोण से विचार करने पर ज्ञात होता है कि गुरु गोविन्दसिंहजी का काव्य एक भक्त कवि का काव्य है। सृष्टि के कण-कण में ईश्वर की सत्ता को देखकर विस्मय विमुग्ध हो आत्म विस्मृति की स्थिति में पहुँच जाते हैं।

'जलस तुही, थलस तुही'
नदिस तुही, नदस तुही आदि।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहते-कहते वे अन्त में, तुही, तुही, तुही, तुही, तुही, तुही ही कहते रह जाते हैं। काव्य विस्मृत हो जाता है और ईश्वर प्रधान हो जाता है। वे अपने-आपको भूलकर उस रस दशा में पहुँच जाते हैं, जिसे साहित्यिक भाषा में हम 'ब्रह्मानन्द सहोदर' की संज्ञा देते हैं।

इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंहजी के काव्य में भक्ति की स्रोतस्विनी प्रवाहित होती हुई प्रतीत होती है। उनका भक्ति काव्य अपने-आपमें अद्वितीय है और उनकी साधना एक सच्चे साधक की साधना की सीमा तक पहुँच चुकी है, जहां जाकर शब्द गौण पड़ जाते हैं, भावों का अभाव हो जाता है और वाणी मूक हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री भजनसिंह

११. गुरुजी के विजय-पत्र

यह बात तो निर्विवाद है कि विपक्षी से अपने मतभेदों को पहले शान्तिपूर्ण उपायों से हल करने का प्रयास करना चाहिए। परन्तु शांति-पूर्ण उपाय सदैव फलीभूत नहीं होते। और जब शांति की सभी दलीलें बहरे कानों में पड़ रही हों, जब शत्रु अपनी ज़्यादतियों की अति करता जा रहा हो, जब वह शांति और धैर्य को दुर्बलता की निशानी समझ रहा हो, तो ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? आज से लगभग ३०० वर्ष पूर्व गुरु गोविन्दसिंह ने औरंगजेब को फारसी भाषा में लिखे एक पत्र में उक्त प्रश्न का उत्तर दिया था :—

चू कार अज हमां हीलते दर गुजस्त,
हलालस्तु बुरदन ब शमशीर दस्त।

जब नीति के सभी साधन असफल हो जाएं, तो तलवार का सहारा लेना सभी दृष्टियों से उचित है।

गुरु गोविन्दसिंह के औरंगजेब को लिखे दो पत्र उपलब्ध होते हैं।

उनके दरबारी कवि 'सेनापति' ने अपनी रचना 'गुरु शोभा' में लिखा है कि खिडराना का युद्ध समाप्त होने के पश्चात् गुरु गोविन्दसिंह ने भाई दयासिंह के द्वारा एक पत्र औरंगजेब को भिजवाया। उनके लिखे सुप्रसिद्ध पत्र 'ज़फरनामा' की चर्चा तत्सम्बन्धी सभी इतिहासों में प्राप्त है। सेना-पति ने भी 'गुरु शोभा' में उसी का उल्लेख किया लगता है। 'दशम ग्रंथ'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में भी वही पत्र संग्रहीत है। परन्तु उसके अतिरिक्त एक और पत्र भी प्रकाश में आया है, जिसका पूर्ण कथ्य अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है, परन्तु जो कुछ भी उपलब्ध है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि वह पत्र चमकौर के युद्ध के एकदम पश्चात् और 'जफरनामा' के पूर्व लिखा गया होगा।

प्रथम पत्र की आधारभूत सामग्री

बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भाग ३, अंक २ (अगस्त, १९२२) में छत्रपति शिवाजी द्वारा भेजा राजा जयसिंह को लिखा हुआ फारसी पत्र प्रकाशित कराया था। उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा था कि लगभग ३० वर्ष पूर्व उन्होंने गुरु गोविन्दसिंह के जन्मस्थान पटना के गुरुद्वारे के महन्त बाबा सुमेरसिंह के पास दो पत्र देखे थे। उनमें से एक गुरु गोविन्दसिंह जी का वह पत्र था, जो उन्होंने औरंगजेब को लिखा था और दूसरा पत्र छत्रपति शिवाजी का भेजा राजा जयसिंह के नाम था।

रत्नाकरजी ने बाबा सुमेरसिंह से इन दोनों पत्रों की प्रतिलिपि प्राप्त कर ली थी। बाबाजी के पास ये पत्र गुरुमुखी अक्षरों में लिखे हुए थे। रत्नाकरजी ने उन्हें फारसी अक्षरों में लिख लिया था। घर आकर उन्होंने ये पत्र किसी पुस्तक में रख दिए और काफी समय तक उनकी ओर कोई ध्यान न दिया। कई वर्ष पश्चात् जब उन्हें अपनी किसी रचना के लिए शिवाजी द्वारा जयसिंह को लिखे पत्र की आवश्यकता हुई तो उन्होंने उन पत्रों को बहुत ढूंढा परन्तु वे प्राप्त न हो सके। उन्होंने पुनः उनकी नकल प्राप्त करने का प्रयास किया परन्तु उस समय तक बाबा सुमेरसिंह पंजाब आकर स्वर्गवासी हो चुके थे।

रत्नाकरजी को बाद में शिवाजी वाला पत्र तो प्राप्त हो गया पर गुरु गोविन्दसिंह वाला पत्र प्राप्त न हुआ। उनके मतानुसार उस पत्र में लगभग एक सौ शेर थे। चूंकि उस पत्र का अध्ययन उन्होंने बड़े

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मनोयोग से किया था इसलिए उसके कुछ शेर उन्हें स्मरण हो गये थे। उसी आधार पर उन्हें लिपिबद्ध कर उन्होंने सरदर उमरावसिंह शेरगिल (सुप्रसिद्ध चित्रकर्त्री अमृता शेरगिल के पिता) को भेजा था। सरदारजी ने इन्हें क्रमबद्ध कर १८ अप्रैल, १९३९ को खालसा कालेज अमृतसर को भेजा और एक प्रति सुप्रसिद्ध पंजाबी साहित्यकार भाई वीरसिंहजी को भी दी गयी। भाई वीरसिंहजी ने इन शेरों को पंजाबी अनुवाद सहित 'उच्च दा पीर' शीर्षक से १६ जुलाई, १९४२ को 'खालसा समाचार' में प्रकाशित किया।

उस पत्र के प्राप्त शेरों का हिन्दी भावार्थ इस प्रकार है :

(१) तलवार, कटार, तीर, फल और ढाल के स्वामी का नाम लेकर।

(२) युद्ध में कुशल योद्धाओं के स्वामी और हवा जैसे तेज घोड़ों के स्वामी का नाम लेकर।

(३) उसका जिसने तुझे बादशाहत दी और हमें धर्म-रक्षा का गौरव दिया।

(४) तुझे दी दगे और फरेब से युक्त लूटमार की लड़ाई और मुझे सफाई और साफ दिली का उपाय।

(५) औरंगजेब नाम तेरे लिए शोभाजनक नहीं है। राजसिंहासन को शोभायमान करने वालों के लिए दगा-फरेब ठीक नहीं।

(६) तुम्हारी माला, मनके और धागा और कुछ नहीं, क्योंकि तुम उन मनकों को दाना बनाते हो और धागे को जाल।

(७) तुमने अपने पिता की मिट्टी निकृष्ट कर्मों द्वारा अपने भाई के लहू से गूंधी है।

(८) और उससे अदने नश्वर राज्य के महल की नींव रखी है।

(९) मैं अब अकाल पुरुष की कृपा से लोहे के पानी (तलवार की धार) की ऐसी वर्षा करूंगा।

(१०) कि इस पवित्र भूमि पर उस अपवित्र चारदीवारी (मुगल साम्राज्य) का नाम निशान न रहे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(११) दक्षिण (महाराष्ट्र) से तू प्यासा (असफल होकर) वापस आया है। मेवाड़ से भी कड़ुवा घूंट भर कर आया है।

(१२) अब जब तेरी दृष्टि इधर मुड़ी है, तो तेरी वह तल्खी और प्यास मिट जाएगी।

(१३) मैं इस प्रकार तुम्हारे पैरों के नीचे आग रखूंगा कि पंजाब में तुझे पानी नहीं पीने दूंगा।

(१४) क्या हुआ जो गीदड़ ने धोखे से शेर के दो बच्चे मार दिए।

(१५) जब कि खूंखार शेर अभी तक जीवित है। वह तुमसे बदला ले लेगा।

(१६) मैं अब तेरे खुदा के नाम (पर ली हुई शपथ) का कोई विश्वास नहीं करूँगा। मैंने तेरे खुदा और खुदा के कलाम को देख लिया है।

(१७) तेरी सौगन्धों का मुझे विश्वास नहीं है। मुझे तलवार पकड़ने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं है।

(१८) यदि तू बड़ा चालाक भेड़िया है, तो मैं भी एक शेर को पिंजरे से तेरा सामना करने के लिए छोड़ूंगा।

(१९) यदि फिर मुझसे तुम्हारी बातचीत हुई तो मैं तुम्हें उचित और सत्य मार्ग दिखाऊँगा।

(२०) मैदान में दो सेनाएँ पंक्तिबद्ध खड़ी हो जाएँ और शीघ्र ही आपस में परिचित हो जाएं।

(२१) दोनों के बीच सात मील का अन्तर रहे।

(२२) इसके पश्चात् में उस युद्धभूमि में अकेला आऊंगा। तुम दो घुड़सवार साथ लेकर आना।

(२३) तुमने लाड़-प्यार और सुख के फल खाए हैं। तू कभी योद्धाओं के सम्मुख नहीं आया।

(२४) तू स्वयं तलवार और कटार लेकर युद्धक्षेत्र में आ। ईश्वर की सष्टि को नष्ट कर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरा पत्र : जफरनामा

सेनापति ने गुरु शोभा में तथा अन्य सभी इतिहासकारों ने 'जफरनामा' का उल्लेख सर्वत्र किया है। यह पत्र दशम ग्रन्थ में भी संगृहीत है। 'जफरनामा' शीर्षक से संग्रहीत दशम ग्रन्थ में जो भाग है, उसमें लगभग १४०० शेर हैं। इन शेरों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) पत्र भाग।

(२) हिकायत भाग।

पत्र भाग में कुल १११ शेर हैं। शेष भाग ११ हिकायतों में बंटा हुआ है, जो 'चरित्रोपाख्यान' ढंग की चरित्र-कथाएँ मात्र हैं। सम्भव है ये हिकायतें मूल पत्र का भाग न हों। यह भी संभव है कि गुरु गोविन्दसिंह ने 'चरित्रोपाख्यान' ढंग की कुछ कथाएं फारसी में भी लिखी हों जिन्हें बाद में मूल पत्र 'जफरनामा' के साथ जोड़ दिया हो। यहां हमारा संबंध मूल पत्र से ही है।

इस पत्र के शेर ५३ और ५४ से यह स्पष्ट है कि यह पत्र औरंजेब द्वारा प्राप्त किसी पत्र के उत्तर में लिखा गया था। ५३वें शेर का भावार्थ है।

तुम्हारा कर्त्तव्य है कि काम को पूरा करने (और अपने) लिखे अनुसार विचार करो।

५४वें शेर में लिखा है—

लिखा हुआ पत्र पहुंच गया है। मौखिक भी कह दिया गया है। (तुम्हें) चाहिए कि उसे सुख से पूरा करो।

सिख इतिहासों में इसका उल्लेख है कि औरंजेब ने गुरु गोविन्दसिंह को प्रत्यक्ष भेंट करने के लिये बुलाया था। उस पत्र के उत्तर में ही यह पत्र लिखा गया होगा।

गुरु गोविन्दसिंह ने यह पत्र खिदराना के युद्ध के पूर्व, जब वे दीना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नामक स्थान पर थे, लिखा था। पत्र में इस बात का संकेत है। ५८वें शेर में वे लिखते हैं—

"आप कांगड़ गांव में तशरीफ लाइये। वहां भेंट हो जाएगी।"

दीना ग्राम कांगड़ जमींदारी का ही एक गांव था। यहां के निवासी अधिकांश बेराड़ जाति के थे, जो गुरु के अनन्य शिष्य थे। ५०वें शेर में उन्होंने इस ओर भी संकेत किया है—

इस मार्ग पर आपको कण मात्र भी भय नहीं (होना चाहिए, क्योंकि) सम्पूर्ण बेराड़ जाति मेरी आज्ञा में है।

इस पत्र के प्रारम्भिक १२ शेरों में गुरु गोविन्दसिंह ने निराकार सर्व-व्यापी ईश्वर का गुणगान किया है। आगे के शेरों में उन्होंने औरंगजेब और उसके सेनापतियों की सौगन्धों पर अविश्वास प्रगट किया है। उन्होंने इस पत्र में चमकौर के उस युद्ध का भी संकेत किया है, जब क्षुधा-पीड़ित चालीस सैनिकों पर असंख्य मुगल सेना ने आक्रमण कर दिया था। २२वें शेर में उन्होंने अपना प्रसिद्ध सिद्धान्त वाक्य कहा—

"जब नीति के सभी साधान असफल हो जाएं, तो तलवार का सहारा लेना सभी दृष्टियों से उचित है।"

आगे के अनेक शेरों में उन्होंने चमकौर युद्ध का वर्णन किया है, किस तरह मुगल सेनापतियों ने अपनी प्रतिज्ञाओं को भूलकर उनपर आक्रमण किया, किस तरह उन्होंने (गुरु गोविन्दसिंह ने) उस युद्ध में नाहर खान को मौत के घाट उतार दिया और ख्वाजा महमूद ने किस प्रकार छिपकर अपनी जान बचाई, किस तरह उन्होंने रात्रि के अंधेरे में चमकौर दुर्ग का त्याग किया।

४६वें शेर में वे कहते हैं—

न तुममें ईमान-परस्ती है, न कोई उचित ढंग ही। तुमने न साहब को पहचाना है, न तुम्हें मुहम्मद पर विश्वास है।

फिर वे औरंगजेब को पंजाब आने के लिए आमंत्रित करते हैं। साथ ही यह भी लिखा है कि यदि मेरे पास हुक्म आ जाए, तो मैं प्राण और तन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से तुम्हारे पास आ जाऊंगा। उसे यह भी स्मरण कराते हैं कि उनके चार पुत्र मार डाले गये हैं, परन्तु उसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं; क्योंकि कुंडलदार सांप (खालसा) अभी भी शेष है।

औरंगजेब को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा—तुझमें अनेक गुण हैं। पर उन अनेकों गुणों के रहते हुए तुम धर्म (दीन) से बहुत दूर हो, अर्थात् तुम दीन का अपने-आपको पालक समझते हो, परन्तु उसकी वास्तविकता से बहुत दूर हो।

१०५वें और १०६वें शेर में उन्होंने लिखा कि यदि तुम्हारी दृष्टि अपनी सेना और धन की ओर है, तो मेरी दृष्टि ईश्वर की कृपा पर है। यदि तुम्हें अपने राज्य और धन का अहंकार है, तो मुझे ईश्वर का सहारा है।

अन्य दो शेरों में वे ईश्वर पर अपनी पूर्ण आस्था प्रकट करते हुए-कहते हैं कि यदि वह सहायक हो तो सैकड़ों शत्रु भी कुछ नहीं कर सकते। यदि कोई शत्रुता निभाने के लिये हजारों व्यक्ति अपने साथ ले आए तो उसका बाल भी बाँका नहीं किया जा सकता।

इस पत्र को गुरु गोविन्दसिंह ने भाई दयासिंह द्वारा औरंगजेब के पास भिजवाया, जो उस समय अहमदनगर में था। कुछ समय की प्रतीक्षा के पश्चात् भाई दयासिंह यह पत्र औरंगजेब के पास पहुंचाने में सफल हो गये। उस समय के ऐतिहासिक सूत्रों से ज्ञात होता है कि औरंगजेब ने तत्काल यह आज्ञा प्रसारित करा दी कि गुरु गोविन्दसिंह को कोई कष्ट न दिया जाए और सम्मान सहित बादशाह के पास लाया जाए।

बादशाह के खास मुंशी मिरजा इनायतुल्ला खान इमशी द्वारा संपादित 'अहिकामि आलमगीरी' (हस्तलिखित) की एक प्रति रामपुर के पुस्तकालय में सुरक्षित है। उसके सातवें-आठवें पृष्ठ पर शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम (बहादुरशाह) सूबेदार पंजाब, मुलतान और काबुल के दीवान और नायक सूबेदार लाहौर मुनइम खान के लिये बादशाह का फारसी में जो हसबुल हुक्म दर्ज है, उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"इस समय बादशाह की ओर से वजीर साहब को लिखने की आज्ञा हुई है कि नानक पूजों के सरदार गोविन्द की ओर से वकील के द्वारा बादशाह के दरबार में हाजिर होने का इरादा और शाही फर्मान प्राप्त करने की इच्छा के विषय में अर्जदास्त पहुंची थी। बादशाह ने आज्ञा प्रसारित कर उन्हें सम्मान दिया है। गुरजबरदार और मुहम्मद यार मनसबदार, जो फर्मान लेकर आ रहे हैं, को यह हुक्म आप तक पहुंचाने की, आज्ञा दी गई है। आपको चाहिए कि उनको दिलासा और तसल्ली देकर अपने पास बुलाओ और फर्मान पहुंचने के पश्चात् एक विश्वासी व्यक्ति जो मिलनसार और चतुर हो, गुरजबरदार और मनसबदार के साथ देकर उन्हें बादशाह के हुजूर में पहुंचाओ। इस संबंध में बादशाह की ओर से अत्यन्त ताकीद समझना।"

सेनापति ने 'गुरु शोभा' में भी इस बात की पुष्टि की है—

गुरजदार फुरमान ले दयासिंह के संगि।
बिदा कि-ताही समे बादशाह औरगजेब। (पृष्ठ ७८)

दक्षिण की ओर

भाई दयासिंह अहमदनगर में औरंजेब को पत्र दे सकने में सफल हुये या नहीं, इस बात का पता गुरु गोविन्दसिंह को बहुत समय तक नहीं लगा और वे पंजाब से दक्षिण की ओर चल दिये। गुरु गोविन्दसिंह किस उद्देश्य से दक्षिण की ओर चले, इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में पर्याप्त मतभेद है, परन्तु अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि वे औरंगजेब से मिलने के लिये ही दक्षिण की ओर जाने के लिए उद्यत हुए। सेनापति ने भी इसका उल्लेख किया है—

बहुत दिवस बीतिउ तहा प्रगट करो बीचार।
दयासिंह इत ते चलिउ उत ते सिरजनहार॥

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दयासिंह दच्छन दिशा लागी बहुत अबार ।
सिंहन को साहिब कहिउ सबै होहु तइयार ।

गुरु गोविन्दसिंह ने अक्तूबर सन् १७०६ में दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उन्होंने राजस्थान (मारवाड़) के मार्ग से दक्षिण जाने का निर्णय किया। इस निर्णय के अनुसार वे राजस्थान की ओर चल पड़े। राजस्थान में अनेक राजपूत राजाओं ने उनका स्वागत किया। जब वे बघौर नामक स्थान पर पहुंचे तो भाई दयासिंह दक्षिण से वापिस आते हुए उन्हें यहीं मिले और उन्होंने सभी समाचारों से अवगत कराया। बादशाह के गुरज़बरदार और मनसबदार शाही फरमान मुनइम खान को पहुंचाने के लिए सीधे दिल्ली चले गये। यहीं उन्हें औरंगजेब की अहमदनगर में मृत्यु (२० फरवरी सन् १७०७) का समाचार मिला।

गुरु गोविन्दसिंह की औरंगजेब से भेंट होने के पूर्व ही औरंजेब की मृत्यु हो गयी। यदि वह भेंट हुई होती, तो ऐतिहासिक दृष्टि से वह एक बड़ी रोमांचकारी घटना हुई होती। एक ओर होते युवा अध्यात्मिक पुरुष (गुरु गोविन्दसिंह की आयु उस समय लगभग ४० वष की थी) जिन्होंने अपनी आध्यात्मिकता को सैनिक-शांति का सरक्षण भी प्रदान किया था; क्योंकि वे जानते थे कि कोई जाति आध्यात्मिक शान्ति को तभी प्राप्त कर सकती है, जब वह सैनिक दृष्टि से भी सुरक्षित हो। दूसरी ओर होता वयोवृद्ध राजपुरुष (औरंगजेब की आयु उस समय लगभग ९० वर्ष की थी) जिसने अध्यात्म और धर्म की आड़ में राजशक्ति प्राप्त की थी और उसे सुरक्षित रखने के लिए बराबर धर्म की दुहाई देता जा रहा था। एक का आधार था विश्वास और विस्तार, दूसरे का आधार था अविश्वास और संकुचन। विश्वास अविश्वास से मिलने गया, किन्तु उसके पहुंचने के पूर्व ही अविश्वास दम तोड़ चुका था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री महेन्द्रसिंह प्रभाकर

१२. वे पावन स्थल

किसी भी महापुरुष के जीवन का विवेचन करते समय हमारे समक्ष स्वतः कुछ ऐसे पावन स्थलों की तस्वीर खिंच जाती है, जिनमें हमें आज भी उस युग-पुरुष की महत्ता का आभास मिलता है। सिखों के दसवें गुरु, श्री गुरु गोविन्दसिंहजी के जीवन पर एक दृष्टि डालने से ऐसे कुछ पवित्र ऐतिहासिक स्थान हमारे मानस-पट पर उभर आते हैं, जिनको जाने बिना गुरुदेव के जीवन की पूरी जानकारी की बात कभी सोची भी नहीं जा सकती। उन कई महत्त्वपूर्ण स्थानों में से कुछ मुख्य पावन स्थल हैं—उनका जन्म-स्थान बिहार की राजधानी पाटलिपुत्र, उनके जीवन का मुख्य कर्मक्षेत्र श्री आनन्दपुर साहेब, उनकी साहित्यिक रचनाओं के सृजन की भूमि—पांवटा साहेब एवं श्री हजूर साहेब, जहां उन्होंने अपना नश्वर शरीर छोड़ा।

पाटलिपुत्र अर्थात् पटना साहेब को यह सौभाग्य प्राप्त है कि श्री हेमकुंट से जगी उस महान ज्योति ने संवत् १७२३ माह पोष शुक्ल तिथि सप्तमी दिन रविवार, तदनुसार २६ दिसम्बर, १६६६ ई० को माता गुजरी की कोख से अवतार धारण किया। गुरु गोविन्दसिंह के पिता श्री तेगबहादुरजी आसाम में राजा रामराय एवं चक्रध्वज के विवाद को सुलझाने के लिए परिवार-सहित जा रहे थे। रास्ते में वे भगत जैतामल के निवास-स्थान पर ठहरे, जहां अब गायघाट नाम का प्रसिद्ध स्थान है। गुजरीजी गर्भवती थीं, अतः उन्हें अपने साले भाई कृपालजी की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

देख-रेख में छोड़कर गुरु तेगबहादुर आसाम चले गये। 'गायघाट' के मकान में जगह कम होने के कारण गुजरीजी एवं उनके परिवार के अन्य सदस्यों को कष्ट होता था। तखत हरिमन्दिर उस समय श्री टोडरमल जौहरी की हवेली था। इसके जितनी बड़ी हवेली आस-पास कहीं नहीं थी। टोडरमल जौहरी गुरु-घर का भक्त था, अतः उसके विशेष अनुरोध पर माता गुजरी परिवार के अन्य सदस्यों सहित यहीं चली आई।

गुरु तेगबहादुरजी की प्रतिष्ठा बिहार एवं आसाम में बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। राजा रामराय और चक्रध्वज में समझौता कराने के फल-स्वरूप लोग उन्हें अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे थे। जब गुरु गोविन्दसिंहजी का जन्म हुआ, तो चारों ओर प्रसन्नता की लहर छा गयी।

पटना में गुरुजी से संबंधित तीन मुख्य स्थल हैं—श्री हरिमन्दिरजी, गोविन्द घाट एवं मैनी संगत अर्थात् बाल-लीला भूमि।

तखत हरिमंदिरजी का इतिहास अत्यन्त रोमांचक है। जैसा कहा जा चुका है, यह एक बहुत बड़ी हवेली थी। आसाम से गुरु तेगबहादुर जी ने यहां हुक्मनामे भी भेजे कि हवेली ज्यादा बड़ी है, अतः सर्दियों के दिनों में बाल गोविन्द को बाहर नहीं घूमने दिया जाय। इस हवेली के इर्द-गिर्द किले के ढंग पर लम्बी-लम्बी दीवारें बनी हुई थीं। इसके निकट उत्तर की ओर एक मस्जिद थी। बाल गोविन्द खेलते हुए उस मस्जिद के अहाते में चले जाते थे। वे अक्सर मुल्ला के अज़ान देने के वक्त उसे सुनने की उत्सुकता में वहां जाते थे। उनके व्यक्तित्व से मुसलमान इतने प्रभावित थे कि वे उन्हें पैगम्बर, पीर, औलिया एवं मुर्शिद कहकर पुकारते एवं उन्हें प्यार करते। आज भी वह मस्जिद कायम है। सन् १७८१ में जॉन विल्किन अपनी भारत-यात्रा के क्रम में पटना आया था। उसने लिखा है कि लोग गुरु गोविन्दसिंहजी के जन्म-स्थल को 'एक प्रियतम निधि' के रूप में रखवाली करते थे। बाद में यह हवेली जीर्ण-शीर्ण होकर टूट गयी। महाराजा रणजीतसिंह को मंदिर की दयनीय अवस्था

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की सूचना दी गयी। सिर्फ एक कोठरी बची थी और माताजी का ऐतिहासिक कुआं भी मिट्टी से भर गया था। अतः १८३५ में महाराजा रणजीतसिंह ने गुरु गोविन्दसिंहजी के जन्म-स्थान को नये सिरे से बनवाया। उस समय यहां दो मुख्य उत्सव होते थे—गुरु नानक-जयन्ती एवं गुरु गोविन्दसिंह जन्म-समारोह। हरिमंदिरजी में प्राप्त अभिलेखों के अनुसार, इन दोनों सम्मेलनों में ६००) रुपये खर्च होते थे—जिसका आधा महाराजा रणजीतसिंह देते थे और आधा यहां का तत्कालीन हाकिम आम जनता से चन्दा कर पूरा करता था। बाद में महाराजा रणजीतसिंह द्वारा निर्मित भवन भी भूचाल के कारण टूट गया और इसका नए सिरे से निर्माण हुआ। नव-निर्मित तखत हरिमंदिरजी के विशाल भवन की नींव आज से कुछ ही वर्ष पूर्व पटियाला नरेश ने रखी थी। इसके निर्माण में हजारों यात्रियों एवं भक्तों ने तन, मन, धन से सहायता की और आज यह मंदिर बिहार के दर्शनीय स्थानों में से एक गिना जाता है। वस्तुतः इसकी स्थापत्य कला के बारे में कोई एक राय नहीं बनायी जा सकती। पुराने और नए मंदिर के भवनों का सूक्ष्म विवेचन करने पर एक बात हम स्पष्ट पायेंगे कि यही भवन नहीं, अपितु सिखों के प्रायः सभी महान ऐतिहासिक स्थानों के भवनों का निर्माण हिन्दू और मुस्लिम स्थापत्य-कला के आधार पर ही हुआ है। हरिमंदिर जी के विशाल भवन में चारों ओर गुम्बद हैं। एक विशाल मुख्य हॉल है, जहां गुरु गोविन्दसिंहजी के शस्त्र, उनका झूलना एवं खेलने के कुछ सामान, यथा गूलेल, तोर इत्यादि रखे हुए हैं। मंदिर के दरवाजे चारों दिशाओं में खुलते हैं, जो सिख-धर्म के निष्पक्ष एवं असाम्प्रदायिक होने का संकेत देते हैं। अन्दर के कमरे में गुरुजी का चित्र, उनके एवं गुरु तेगबहादुरजी के हुक्मनामे तथा अन्य प्राचीन वस्तुएं सुरक्षित हैं।

हरिमंदिरजी से थोड़ी दूर उत्तर की ओर गोविन्द घाट है, जो गंगा के किनारे पर स्थित है। इसे 'चिमनी घाट' भी कहते हैं। इस घाट पर पानी टकरा कर निकट के बने होज में गिरता था। गुरुदेव यहां रोज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खेलते हुए आते थे और उस हौज में खेलते थे।

गुरुदेव हरिमंदिरजी के पिछवाड़े 'बाड़े गली' में स्थित उद्यान में अपने साथियों को दो दलों में बांट लेते और आपस में छोटी-छोटी लड़ाइयां लड़ने का खेल खेलते।

गुरुदेव कभी-कभी अपने साथियों को लेकर 'गुरु के बाग' की ओर भी निकल जाते थे। इस स्थान पर गुरु तेगबहादुर के आसाम से लौटने पर पटने के नागरिकों द्वारा उनका अभिनंदन हुआ था। यह बाग पहले वीरान एवं शुष्क था। गुरुदेव के चरण डालने से हरा-भरा हो गया। यहीं पर जैता बैरागी को गुरुदेव ने जीवन का वास्तविक एवं सच्चा दर्शन बताया।

हरिमंदिरजी के समीप दखिन में मैनी संगत नाम का ऐतिहासिक स्थान है, जिसे बाल-लीला भूमि भी कहा जाता है। यह एक अमीर जमीन्दार फतेहचन्द मैनी का निवास-स्थान था, जिसे लोग 'राजा फतेहचन्द' कहा करते थे। यह स्थान काफी बड़ा और रमणीक था। गुरुदेव अपने साथियों सहित खेलने और घूमने के लिये नित्य आया करते थे। रानी मैनी गुरुदेव को खेलते हुए रोज देखती। उनके गुरुत्व का आभास पा एक दिन उसने उन्हें स्नेह से कहा कि वह उन्हीं जैसा एक पुत्र चाहती है। गुरुदेव ने रानी मैनी को अपनी धर्म की माँ बनाकर कृतज्ञ किया और वहां पर बन रही पूड़ियाँ और घुघनी को दोस्तों में वितरित करने की विनय की। तब से इस स्थान पर रोज घुघनी के प्रसाद-वितरण की परम्परा है। यह स्थान तीन मंजिला था और राजाओं के महल जैसे सुन्दर था। इसकी पहली मंजिल गिरने के बावजूद इसके भीतर रखे विशाल काँच के दीपों और बड़े-बड़े आदमकद शीशों तथा पीतल के खम्भों को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि कभी यह स्थान कितना ऐश्वर्यपूर्ण रहा होगा। इधर हाल में इस इमारत के बचे-खुचे भाग के भी जीर्ण होने के कारण पुराने भवन को तुड़वाकर एक नयी इमारत बन रही है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जैसा कहा जा चुका है, सात वर्ष की अल्पायु में गुरुदेव अपने परिवार-सहित पटने से आनन्दपुर चले गए। नांगल, जो भाखड़ा डेम के कारण विश्व-विख्यात स्थान बन गया है, अत्यन्त समीप पहाड़ियों से घिरा यह स्थान आनन्दपुर पहले, 'भाखोवाल' कहलाता था और यह कहिलूर राज्य में पड़ता था। वस्तुतः मुगल सम्राट की दमनकारी नीति के विरुद्ध स्वयं को संगठित करने के अभिप्राय से ही गुरु गोविन्दसिंहजी के पूर्वजों ने इस स्थान का चयन किया था। आनन्दपुर में गुरुदेव ने अपनी जिन्दगी का तीन चौथाई हिस्सा (करीब ३० वर्ष) व्यतीत किया। यहां पहुंचने के दो वर्ष के अन्दर ही उन्होंने अपने पिता, सिखों के नवम गुरु श्री गुरु तेगबहादुर जी को औरंगजेब की धर्म-विरोधी नीति को रोकने के लिये अपना बलिदान देने के लिये भेजा। औरंगजेब द्वारा गुरु तेग-बहादुर एवं उनके शिष्यों की हत्या के परिणाम स्वरूप सारे देश में और विशेष कर पंजाब में क्रोध और प्रतिहिंसा की लहर छा गयी।

गुरु गोविन्दसिंहजी के लिए यह समय अत्यन्त कठिन परीक्षाओं का था। पंजाब मुगलों का अजेय दुर्ग समझा जाता था। उन्हें अपने कुटुम्बियों के विरोध का अलग सामना करना पड़ता था। भारत सम्राट के खिलाफ जैसी शक्तिशाली सेना की आवश्यकता थी, उसके लिए साधन अपर्याप्त थे। डॉ० बनर्जी के कथनानुसार गुरुदेव ने आनन्दपुर से विभिन्न स्थानों को हुक्मनामे भेजे और धीरे-धीरे उनके पास पर्याप्त अस्त्र-शस्त्र जमा हो गए। उनके दरबार की शान-शौकत इतनी निराली थी कि कहिलूर नरेश इसी बात पर उनसे खार खाने लगा।

कहिलूर नरेश की बढ़ती ईर्ष्या को देखते हुए माताजी के परामर्श के अनुसार गुरुदेव आनन्दपुर से 'नाहन रियासत' में चले गए और यहीं जमना किनारे उन्होंने 'पांवटा साहेब' बसाया। यह बड़ी मनोरम और शान्त जगह है। वस्तुतः इसका ऐतिहासिक सम्बन्ध उनके साहित्यिक जीवन से है। यहाँ वे तीन वर्ष रहे। 'कृष्णावतार' जैसी बृहत् रचना का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सृजन उन्होंने यहीं किया। कृष्णावतार के गोपी विरह खंड में इस स्थान का वर्णन है—

'सत्रह से चतवाल में, सावन सुदी बुधवार
नगर पांवटा मोंसु मैं, रचियो ग्रंथ सुधार।'

और ग्रंथ के अन्त में भी इस स्थान का संकेत है—

सत्रह से पैताल महि, सावन सुदि तिथि दीप,
नगर पांवटा सुध करण, जमना बहे समीप।

गुरु गोविन्दसिंहजी की निरन्तर बढ़ रही शक्ति देखकर आस-पास के पहाड़ी राजे बहुत चिन्तित हो गए थे। अतः इस पौधे को आरंभ में ही कुचलने के लिए उन्होंने इसी स्थान पर गुरुदेव पर आक्रमण किया। 'पांवटा साहेब' के समीप अप्रैल १६८६ में 'भंगानी' में जमकर युद्ध हुआ, जिसमें गुरुदेव विजयी रहे।

तत्पश्चात् वे वापस आनन्दपुर आ गए, जिसे तब तक गुरु का चक अर्थात् गुरु का गांव कहा जाता था। उन्होंने उसका नाम आनन्दपुर रखा—

'युद्ध जीत आए जबै, टिके न तिनपुर पांव।
कहिलूर महि बांध्यो, आन आनन्दपुर गांव।'

अब गुरुदेव ने अपनी सुरक्षा के प्रबंध कड़े कर दिये। आनन्दपुर की रक्षा एवं सामरिक तैयारी के लिये पांच दुर्ग बनाए गए—लोहगढ़, केशगढ़, फतेहगढ़, तारागढ़, एवं होलगढ़। इनमें केशगढ़ अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ; क्योंकि यहीं पर गुरुदेव ने सन् १६९९ में 'खालसा पन्थ' का निर्माण किया। वे एक कुशल नेता और आयोजक थे। अपने आन्दोलन का आधार उन्होंने नम्र, वीर, एवं सच्चे साधारण जन-समूह को बनाया। उनके द्वारा नियुक्त पांच प्यारों में एक खत्री और चार शूद्र थे। उन्होंने सिखों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के लिए जाति-भेद निषिद्ध बताया और 'मानस की जाति सब एकैही पहचानबो' का दिग्दर्शन कराया। डॉ० महीपसिंह के शब्दों में, "उन्होंने नौ पीढ़ियों से चले आ रहे एक साधु समुदाय को परिवर्तित कर उसे महावीर 'खालसा' का रूप दिया। घोषणा की —'खालसा मेरो रूप है खास, खालसा में हौं करौं निवास।' कनिंघम ने लिखा है··· "सिखों के अन्तिम गुरु ने पराजित लोगों की सुप्त शक्तियों को जगाया और उन्हें उन्नत करके उनमें सामाजिक स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता, प्रभुता को भर दिया, जो नानक द्वारा बताये पवित्र भाव से जुड़ा हुआ था।"

अपने अधिकतर युद्ध गुरु गोविन्दसिंहजी ने आनन्दपुर से ही लड़े। अपने अपूर्व शौर्य से वे सदैव जीतते रहे। यहाँ के आखिरी युद्ध के लम्बे घेरे से घबड़ा कर माताजी एवं अन्य शिष्यों ने गुरुजी को किला छोड़ने पर मजबूर कर दिया। उन्हें शत्रु पहाड़ी राजाओं और मुगल सरदारों से लिखित आश्वासन मिला था कि अगर गुरुजी किला छोड़ दें, तो वे उन्हें शान्तिपूर्वक जाने देंगे।

गुरुजी ने किला छोड़ दिया, लेकिन 'सरसा' नदी के तट पर पहुँचे ही थे कि शत्रु ने अपने वायदे तोड़कर हमला कर दिया। यहीं पर गुरुदेव के दो छोटे बच्चे अपनी माता के साथ बाकी परिवार से बिछुड़ गए। इस स्थान पर आज भी 'परिवार बिछोड़' गुरुद्वारा उक्त घटना की याद ताज़ा करता है। 'चमकौर' युद्धोपरान्त गुरुदेव 'दमदमा साहेब', जिसे 'गुरु की काशी' कहा जाता है, गए और यहाँ पर उन्होंने गुरु ग्रन्थ साहेब को सम्पादित किया।

सन् १७०८ में, जीवन के अन्तिम चरण में, गुरुदेव अपनी सेना-सहित हैदराबाद दक्खिन स्थित नांदेड़ में भ्रमण करते हुए पहुँचे। यहाँ उन्होंने माधोदास बैरागी से भेंट की और उसे देश की दयनीय स्थिति से अवगत कराते हुए कर्म का सन्देश दिया। माधोदास का पहला नाम लक्ष्मणदेव था और वह एक दिन हिरणी के शिकार के फलस्वरूप उससे जन्मे दो बच्चों को मरते देखकर वैरागी हो गया था। गुरुदेव ने उसमें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुनः कर्त्तव्य भाव भरा और देश-रक्षा हेतु उसे तत्पर किया। यही माधोदास आगे चलकर बन्दा बहादुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पं० जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार यदि बन्दा और गुरु गोविन्दसिंह के संवाद सुरक्षित होते तो आज वह एक दूसरी गीता होती। इस नांदेड़ का ही दूसरा नाम हजूर साहेब है। यहीं पर ७ अक्टूबर सन् १७०८ को सरहिंद के सूबेदार वज़ीर खां द्वारा भेजे दो पठानों द्वारा उनपर घातक आक्रमण हुआ। अपना नश्वर शरीर छोड़ने के पहले गुरुदेव ने देहधारी गुरु-परम्परा समाप्त कर 'गुरु ग्रन्थ' जी को सिखों का गुरु घोषित किया और इसमें निहित उपदेशों के अनुसरण करने का मानव-मात्र से आग्रह किया; क्योंकि वस्तुतः सिख-धर्म किसी संकुचित जातीयता का बोधक नहीं, वरन् 'मानवतावाद' का ही दूसरा नाम है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्रीसत्यदेव नारायण सिन्हा

१३. जन्म-स्थल : तख़्त श्री हरिमंदिरजी साहेब

तखत श्री हरिमंदिरजी वह पवित्र स्थान है, जहाँ संवत् १७२३ की पौष सुदी सप्तमी, तदनुसार छब्बीस दिसम्बर, सन् १६६६ ई० को रात्रि के एक बजकर बीस मिनट पर सिखों के अन्तिम आध्यात्मिक गुरु, पीड़ित मानवता के त्राता, खालसा पन्थ के प्रवर्तक श्री गोविन्दसिंहजी ने जन्म लिया था। प्रतिवर्ष इस पुण्य तिथि को देश-विदेश से हज़ारों यात्री इस तीर्थ की यात्रा पर आते हैं। आज इस स्थान पर बीस लाख रुपये की लागत और कई वर्षों के परिश्रम से बना एक सौ आठ फीट ऊँचा हरि-मन्दिर का नयनाभिराम नव-निर्मित संगमरमर का पांच मंज़िला भवन खड़ा है। भवन-निर्माण की दृष्टि से 'हरिमन्दिर' बिहार के मन्दिरों में श्रेष्ठ माना जाता है। इस नये भवन की आधारशिला संवत २०११ की कार्तिक पूर्णमा, तदनुसार १० नवम्बर, १९५४ ई० को पांच सन्तों ने रखी थी और संवत २०१४ की पौष सुदी सप्तमी तदनुसार २८ दिसम्बर, सन् १९५७ ई० को महाराजा श्री यादवेन्द्रसिंहजी (पटियाला नरेश) ने इसका उद्घाटन किया था।

हरिमन्दिर के सम्पूर्ण भवन को देखने के पश्चात् दाद देनी पड़ती है —जयपुर, जोधपुर और मकराना के उन प्रसिद्ध कारीगरों को, जो संग-मरमर पत्थरों पर नक्काशी करने में अपना सानी नहीं रखते। दर्जनों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की संख्या में ये कारीगर सन् १९५३ ई० में ही यहाँ आये थे और तब से अब तक उन्होंने पत्थरों पर जैसी नक्काशियाँ की हैं, उससे हरिमन्दिर की शोभा द्विगुणित हो उठी है। इसके साथ ही दाद देनी पड़ती है, उन सिख भाइयों को जिन्होंने इस भवन के निर्माण में महीनों सपरिवार श्रमदान किया था। आज उनके श्रमदान का प्रतीक यह भव्य मन्दिर बनकर तैयार खड़ा है। हरिमन्दिर के ऊपरी मंज़िल के गुम्बद पर सात फीट ऊँचा एक स्वर्ण कलश लगा है, जो सूर्य का प्रकाश पाकर मीलों दूर से ही चमकता हुआ दिखाई देता है। हरिमन्दिर के प्रांगण में भवन से थोड़ा हटकर १२७ फीट ऊँचा, गेरुए वस्त्र से मण्डित निशान साहब है, जिस पर पताका फहराती रहती है।

हरिमन्दिर के जिस कमरे में गुरु गोविन्दसिंह का जन्म हुआ था, उस कमरे को सुरक्षित रखा गया है। उस कमरे में स्वर्ण सिंहासन पर उनका एक मात्र तैल चित्र सुशोभित है। आसन के नीचे उनके अस्त्र-शस्त्र रखे हैं। दरवाज़े के दोनों तरफ ग्रन्थी बैठते हैं, जो सुबह-शाम श्री गुरु ग्रन्थ साहब का पाठ करते हैं। श्री गोविन्दसिंहजी की जन्मतिथि को यहाँ यात्रियों की काफी भीड़ हो जाती है।

जौहरी की हवेली : हरि का मन्दिर

हरिमन्दिर, पटना नगर के एक पुराने मुहल्ले में स्थित है, जिसका नाम था 'कूचा फारुख खाँ'। लेकिन वह मुहल्ला अब 'हरिमन्दिर गली' कहलाता है। वह स्थान जिसपर तखत श्री हरिमन्दिर का निर्माण हुआ है, एक ज़माने में पटना के एक प्रसिद्ध रईस सालिसराय जौहरी की हवेली थी। गुरु नानकदेव के पटना आगमन पर, उनसे प्रभावित होकर जौहरी ने सिख धर्म स्वीकार कर लिया था। अपनी विशाल हवेली को जौहरी ने धर्मशाला के रूप में परिणत कर दिया। कालक्रम से जौहरी की धर्मशाला में 'हरि' की भक्ति का जो सिलसिला चला, तो वह 'हरि मन्दिर' के नाम से पुकारा जाने लगा। उन्हीं दिनों सिखों के नवें गुरु श्री

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तेगबहादुरजी सपरिवार पटना आकर गायघाट में ठहरे थे। हरिमन्दिर की चर्चा श्री तेगबहादुर के उस पत्र में भी पायी जाती है, जिसे उन्होंने असम जाते हुए मुंगेर से अपने शिष्यों के नाम लिखा था कि वे उनके परिवार को किसी बड़े भवन में उस समय तक रखें, जब तक श्री हरिमन्दिर का निर्माण पूरा नहीं हो जाता। जब हरिमन्दिर तैयार हुआ, तो गुरु तेगबहादुरजी के परिवार को वहाँ लाया गया, जहाँ गोविन्दसिंहजी का जन्म हुआ।

'मिरातुल अहवाल जहांनुमा' नामक पुस्तक के लेखक मुल्ला अहमद बावहनी ने भी तखत श्री हरिमन्दिरजी की एक स्थान पर चर्चा की है। उन्होंने लिखा है—'सिखों ने गुरु गोविन्दसिंह के जन्म-स्थान पर एक ही भव्य मन्दिर का निर्माण किया है।'

हरिमन्दिर के मूल भवन में तब से अब तक अनेक परिवर्तन हुए हैं। उन्नीसवीं शती के आरम्भ में भयंकर अग्निकांड से हरिमन्दिर को काफी नुकसान पहुँचा था। इसके पुनर्निर्माण का काम पंजाब के राजा रणजीत सिंह द्वारा संवत् १८९६ में शुरू किया गया और संवत् १८९८ में यह भवन बनकर तैयार हुआ। उस समय तक महाराज जीवित नहीं रहे, परन्तु उन्होंने शिलान्यास का मुहूर्त जिस पत्थर से किया था, वह आज भी यहाँ सुरक्षित है। सन् १९३४ ई० के भूकम्प से भी इस गुरुद्वारे का कुछ हिस्सा गिर पड़ा था।

हरिमन्दिर की देखभाल करने वाले पुजारियों में बाबा नवलसिंहजी का नाम (सन् १७९७ ई०) लिखित रूप से पाया जाता है। गुरुद्वारे के विशेष नियम का पालन करने वाले हर सम्प्रदाय के लोगों के लिए हरिमन्दिर का द्वार सदैव खुला रहता है। इसके विशाल 'लंगर' में प्रतिदिन यात्रियों को दोनों वक्त निःशुल्क भोजन दिया जाता है।

ऐतिहासिक महत्त्व की कुछ ऐसी वस्तुएँ हरिमन्दिर में सुरक्षित हैं, जो किसी अन्य गुरुद्वारे में नहीं हैं। इन वस्तुओं में प्रमुख हैं—गोविन्दसिंह का हस्ताक्षर युक्त 'ग्रंथ साहब' जिसे बड़े साहब भी कहते हैं। गुरु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गोविन्दसिंहजी का एकमात्र दुर्लभ तैल चित्र, पंगुरा साहब (वह चौकी जिसपर बाल्यावस्था में गोविन्दसिंहजी बैठा करते थे), लोहे के चार तीर, तलवार, कंघी, बघनखा, लोहे और मिट्टी की गोलियाँ, चक्र, चन्दन की लकड़ी की खड़ाऊँ और वह करघा जिसपर कबीर कपड़ा बुना करते थे। श्री तेगबाहदुर और गोविन्दसिंह के हस्ताक्षरयुक्त पुस्तक जिसे 'हुक्म-नामा' कहते हैं।

हरिमन्दिर के प्रांगण में एक कुआं है, जिसे माता गुजरी का कुआं कहते हैं। आजकल यह कुआं नई इमारत के अन्दर है और केवल इसका दर्शन भर किया जाता है, लेकिन गोविन्दसिंह की बाल्यावस्था में कुएँ का सार्वजनिक इस्तेमाल होता था।

गुरु के पांच प्रमुख स्थान

पटना में, गुरु गोविन्दसिंह के जीवन से सम्बद्ध पांच स्थान हैं (१) श्री हरिमंदिरजी, (२) मैनी संगत, जिसे 'बाल-लीला' भी कहते हैं, (३) गायघाट का बड़ा गुरुद्वारा और (४) गुरु का बाग तथा (५) गुरुद्वारा हांडी साहब (दानापुर)। ये सभी स्थान सिखों के पवित्र तीर्थ-स्थान हैं। श्री हरिमन्दिर गुरु गोविन्दसिंह के जन्म-स्थान के कारण प्रसिद्ध है, तो मैनी-संगत में गोविन्दसिंहजी की चरणपादुका और मिट्टी की कुछ गोलियों को दर्शनार्थी देख सकते हैं। यहां तीन-चार फीट ऊँचा एक करौंदे का पेड़ है। हरिमन्दिर आने वाले दर्शनार्थी बाल-लीला स्थान में आकर इस पेड़ की पत्तियों को प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं।

गुरु का बाग वह स्थान है, जहां सन् १६६६ ई० में पुत्र-जन्म की खबर पाकर असम से लौटते हुए श्री तेगबहादुरजी ने विश्राम किया था। बाग उस समय बिलकुल सूखा हुआ था, परन्तु कहते हैं, उनके आते ही बाग के सारे पेड़ लहलहा उठे। गुरु के बाग में हर महीने की सप्तमी को सिख-समुदाय के अतिरिक्त अन्य धर्मों के सैकड़ों नार-नरी उस कुएं के जल से स्नान करने आते हैं, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह सात सौ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तीर्थों का फल देता है। गायघाट का बड़ा गुरद्वारा वह स्थान है, जहां सिखों के प्रथम गुरु श्री नानकदेव का आगमन हुआ। गुरु तेगबहादुर भी सपरिवार यहां ठहरे थे। हरिमन्दिर का निर्माण पूर्ण होने पर उनके परिवार को एक विशाल जुलूस में यहां से हरिमन्दिर ले जाया गया था। आज भी उसकी याद में प्रतिवर्ष गोविन्दसिंह जयन्ती की पूर्व संध्या को एक विशाल जुलूस यहां से चलकर हरिमन्दिर पहुंचता है। जुलूस के आगे-आगे कीर्तन करती हुई चलती हैं पटना की प्रसिद्ध कीर्तन मंडलियाँ। उनके पीछे होते हैं पटना के अखाड़ों के वे सैकड़ों नौजवान जो लाठी, तलवार, भाला आदि के जौहर दिखलाते चलते हैं। जुलूस के बीच में, कई मन फूल के हारों से सजा वह ट्रक चलता है, जिसपर गुरु गोविन्द-सिंहजी का एक भव्य चित्र रखा जाता है और समवेत स्वर में कई ग्रन्थी, ग्रन्थ साहब का पाठ करते रहते हैं।

दानापुर के गुरुद्वारा हांडी साहब के बारे में कहा जाता है कि जब गोविन्दसिंहजी पटना से आनन्दपुर (पंजाब) की ओर चले, तो प्रथम रात्रि उन्होंने यहां व्यतीत की थी। एक गरीब वृद्धा गोविन्दसिंहजी के लिए मिट्टी की एक हांडी में खिचड़ी लेकर आयी। परन्तु गुरु महाराज के साथ तो सैकड़ों आदमी थे। थोड़ी-सी खिचड़ी से सबकी क्षुधा कैसे शान्त होती? गोविन्दसिंहजी की कृपा से उस छोटी-सी हांडी की खिचड़ी से ही सैकड़ों व्यक्तियों ने भर पेट भोजन किया और इसीलिये इस गुरु-द्वारे का नाम 'हांडी साहब' पड़ा।

जब कभी हमारे देश पर संकट के बादल मंडराते हैं, तब तखत श्री हरिमन्दिर में उस संकट के निवारण के लिये अखंड पाठ का आयोजन किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री यशवन्तसिंह मोंगा

१४. गुरु गोविन्दसिंह के दरबारी कवि

गुरु गोविन्दसिंहजी एक कोमल, कवि-सा दिल रखते थे। उन्हें सिर्फ कविता करने का शौक ही नहीं था, बल्कि अपने दरबार में बावन कवियों को रखे हुए थे। वे राजा-महाराजाओं की तरह कवि-दरबार लगाते, जिसमें उनके कवि अपनी लिखी हुई कविताएँ सुनाते। गुरुजी उनमें अच्छे कवि को इनाम भी देते और खुद भी कविता करते थे।

किसी भी कौम के लिए शायर की हस्ती उतनी ही ज़रूरी है, जितनी अन्धेरे में रोशनी की। नेत्रहीन पृथ्वीराज चौहान को शब्द-भेदी बाण चलाने के लिए यदि किसी ने प्रेरित किया, तो उनके दरबारी कवि ने ही, जिसने उनकी कीर्त्ति पृथ्वीराज रासो लिखकर चमकायी। अकबर की तरह गुरुजी ने भी देश के लुप्त हो रहे प्राचीन बहुमूल्य और दुर्लभ साहित्य को एकत्र करके तथा जनता की भाषा में अनुवाद करके और कराकर कौम की बहुमूल्य सेवा की है।

अकबर की आज्ञा से अथर्ववेद हाजी इब्राहिम ने, महाभारत बदायुनी आदि ने, रामायण नकीब खां आदि ने, लीलावती के गणित के ग्रंथों का फैजी ने तथा नल-दमयन्ती का अबुल फजल ने फारसी में अनुवाद किया। उसी प्रकार गुरु गोविन्दसिंहजी ने भी रामायण, भागवत् पुराण, महाभारत के कुछ अंश विष्णु और शिव के अवतार तथा उन अवतारों की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कथा तथा मार्कण्डे पुराण के अर्थ खुद लिखे जो, 'दशम ग्रंथ' में चौबीस अवतारों की कथा, ज्ञान प्रबोध, चंडी-चरित्र आदि के रूप में मिलते हैं। समकालीन साहित्य को भी प्रोत्साहित किया।

गुरुजी ने अपने दरबार में जो बावन कवि रखे हुए थे, उनमें से कुछ के नाम निम्नलिखित थे—१. आसासिंह, २. आलम, ३. सुखदेव, ४. अली हुसैन, ५. कलुआ, ६. खानचन्द, ७. नन्दलाल, ८. विधिचन्द, ९. चंदन, १०. बृजलाल। गुरुजी के दरबार में संस्कृत के अलावा अरबी और फारसी के ज्ञाता भी मौजूद थे। गुरुजी ने लगभग पाँच काजी रखे हुए थे, जो अरबी की शिक्षा देने के अलावा इन भाषाओं (अरबी, फारसी) के ग्रन्थों का अनुवाद भी करते थे। गुरुजी कवियों का आदर भी करते थे। उन्होंने इन कवियों का भी स्वागत किया जिन्हें औरंगजेब ने अपने दरबार से निकाल दिया था या जिन्हें धर्म-परिवर्तन के लिए मजबूर किया। इनमें 'केशवदास' के पुत्र कुंवरेश और श्री नन्दलालजी ने भी गुरुजी के पास शरण ली। जब गुरुजी युद्ध की तैयारी करने लगे, तब उन्होंने सब कवियों को साजो-सामान, घोड़े, हाथी आदि देकर विदा किया। जब ये कवि रजवाड़ों और रईसों की आन-बान और शान के साथ अपने घरों को लौट रहे थे तो रास्ते में गांवों के लोग भयभीत हो-होकर भागने लगे, इस गलतफहमी से कि कोई हमलावर अपने दल-बल के साथ आ रहा है। इसपर गुरुजी का दरबारी कवि हंसराम उन्हें तसल्ली देता है कि भाई आप लोग हमसे डरते क्यों हैं, हम लोग तो गुरु गोविन्दसिंह के दरबार के भिखारी हैं—

दुधुम्नी धकार बाजे मानो जलधर गाजे,
राजत निशान में भानु छिपे जात हैं।
हाथिन के हल का हजारन गने को हय,
जरत जवाहर जो जगमग जात है।
कोर साजो कर नालन को जोर शोर सुने,
संकर सुरेश और नरेश बिलखात हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'हंसराज' कहते विराजो जिन भाजो,
गुरु गोविन्द के मांगे कविराज चले जात हैं।

गुरुजी के दरबारी कवि कुंवरेश ने, जो महान कवि, 'केशवदास' के पुत्र थे, 'द्रोणपर्व' का अनुवाद किया। अणीराम ने आपके (गुरुजी के) युद्ध के विषय में लिखा। हंसराम की कविता पर खुश होकर के गुरुजी ने उसे साठ हज़ार रुपया इनाम में दिया। 'गुरुदास' की वह कविता की पंक्ति प्रत्येक गुरुभक्त की जीभ पर रहती है, 'वाह वा गोविन्दसिंह आये गुरु चेला।'

नन्दलालजी ने एक बार गुरुजी से प्रार्थना की, 'हुजूर मुझे भी कृपाण दीजिए, ताकि में भी आपके सिख-सेवकों के साथ मिलकर अपना हिस्सा बटाऊं।

नन्दलालजी स्वयं सिख नहीं थे। परन्तु गुरुजी ने नन्दलाल को कृपाण की जगह कलम देते हुए कहा, 'कृपाण के साथ-साथ कलम की भी जरूरत है।'

असल में शान्त-रस की स्थिरता और स्वतन्त्रता के लिए ही तो गुरुजी ने वीर रस का महत्त्व बतलाया कि शान्त लोगों को नीच समझकर ही जालिम तबाह करते हुए संसार की उन्नति को रोकते रहे हैं। गुरुजी की कृपा-दृष्टि जिसपर भी हुई, उसमें नवीन संस्कारों की उत्पत्ति हुई। निम्नलिखित उदाहरण से पता चलता है कि किस प्रकार गुरुजी की निर्मल कृपा-दृष्टि से उनके अस्तबल का एक दास भी एक दूसरे महान कवि को कविता में मात कर गया। एक बार गुरुजी के दरबारी कवि चन्दन को अपने कवि होने का घमंड हो गया। उसने एक दिन जब कि सभी कवि उपस्थित थे और दरबार लगा हुआ था, बड़े गर्व के साथ एक छन्द पढ़ा और ललकारा कि कोई भी कवि उसका अर्थ बताये। छन्द इस प्रकार था:

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"नव सात तीये, नव सात कीये
नव सात पिये, नव सात पिआवे।
नव सात रचे, नव सात बदे
नव सात पिया पे दायिक पाये।
जीत काल नव सातन की,
नव सातन के मुख अचर छाये।
मानो मेघ के मंडल में
कवि चंदन चंद केलेवर आये।"

यह पढ़कर चंदन कवि गर्व से दरबार के सभी कवियों की ओर पेनी नज़र से देखने लगा। उसके गर्वनाश के लिए गरु गोविन्दसिंहजी ने मुस्कुराकर अपने अस्तबल के दास (जो भाग्य से वहां आकर बैठा हुआ कविता सुन रहा था) की ओर इशारा किया, जिसका भाव यह था कि चंदन का घमंड तोड़ दो। गुरुजी की निगाह से निगाह मिलते ही, वह व्यक्ति जिसे कविता का ज्ञान भी नहीं था छन्द के अर्थ सरलतापूर्वक करने लगा। उसने कहा (उसका नाम धन्नासिंह था) कि इस कविता में सिर्फ नव सात शब्द का ही कमाल है और है ही क्या! 'नव सात, का अर्थ है, नव + सात = सोलह। एक सोलह वर्ष की लड़की का जिसने सोलह शृंगार किये, थे सोलह वर्षों का पति सोलह दिनों के पश्चात् अपने घर आया। लड़की ने सोलह दाव का चौपड़ बिछाकर सोलह दाव लगाये। नौजवान ने सोलहों दाव जीत लिये। लड़की ने लज्जित होकर अपना सुन्दर मुख घूंघट में छिपा लिया जिस प्रकार चाँद बादलों की ओट में आ जाय।

अब क्या था। चंदन बड़ा लज्जित हुआ। अब गुरुजी के अस्तबल के दास भाई धन्नासिंह की बारी थी। उसनें अपना छंद सुनाया और कवि चंदन को उसका अर्थ करने के लिए कहा:—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'मीन मरे जल के पर से
कबहु न मरे पावक पाये,
हाथी मरे मद के पर से
कबहु न मरे परदेश सिधाये,
गूढ़ में बात कही द्विजराज
विचार सके न बिना चित लाये।'

अब तो चंदनजी को दिन में ही चांद और सितारे नज़र आने लगे। उसका दिमाग ही बे-लगाम हो गया। वह घबरा-सा गया कि यह कैसे संभव है कि मछली कभी आग में नहीं मर सकती है और जल के स्पर्श में आकर मर जाय, हाथी मद के प्रभाव से मर जाय और तन में ताप के आने से न जरे और स्त्री पिया के स्पर्श से ही मर जाय और पति के परदेश जाने पर कभी न मरे। बिना चिन्तन के ही कवि कहने लगा कि यह तो छन्द ही गलत है। घोड़े की लीद उठाने वाला भला क्या छन्द जानेगा? इसपर धन्नासिंहजी ने समझाया कि पंडितजी, जरा कबहु न के बाद अर्द्ध विराम लगाकर पढ़ें तो अर्थ स्पष्ट हो जायगा, जैसे—

मीन मरे जल के पर से
कबहु न, मरे पर पावक पाये।
हाथी मरे मद के पर से
कबहु न, मरे तन ताप के आये।
तीया मरे पिया के परसे
कबहु न, मरे परदेश सिधाये।
गूढ़ में बात कही द्विजराज,
विचार सके न बिना चित लाये।

अर्थात्, मछली जल के स्पर्श से कभी नहीं मरती, और आग में डालने पर ही मर सकती है, हाथी मद के प्रभाव से कभी नहीं मरता और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तन के ताप से मर जाता है तथा स्त्री पिया स्पर्श में कभी नहीं मरती, पति के दूर चले जाने पर ही मरती है। अब तो चन्दन पानी-पानी हो गया।

इस प्रकार गुरुजी यह नहीं देख सकते थे कि उनके किसी कवि को घमंड हो जाय। गुरुजी की खुद की रचनायें भी काबिले गौर हैं। गुरुजी की प्रसिद्ध रचनाओं में जाप साहिब, काल-उस्तति, विचित्र नाटक, चंडी-चरित्र, शस्त्रनाम माला, शब्द हजारे, चौबीस अवतार, ज्ञान-प्रबोध आदि साहित्य की उत्कृष्ट निधि हैं। गुरुजी ने अपनी रचनाएं कई भाषाओं में लिखी हैं। सिख गुरुओं में आपने सर्वाधिकार छन्दों का व्यवहार किया है। आपने एक छन्द में कई भाषाओं का व्यवहार कर दिखाया, मानों किसी गहने में अनेक तरह के नग जड़े हों—

'कि चित्रं विहने, कि एके अधीने
कि रोजी रजाके, रहीमे रहा के।'

आपने पंजाबी में प्रथम बार ऋखंडी छन्द का व्यवहार किया है, और वह भी 'चंडी दी वार' नामक पुस्तक में। उदाहरणार्थ—

'कड़क उठी रण चंडी फोजां देख
घूह मिआनों खंडा होई सामने
सबै बीर संवारे घूमर नैन दे
जन ले कटे आरे दरख्त बाढ़ी आं।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरुजी ने देश की साहित्यिक निधि को भरने में महान योगदान किया। परन्तु अफसोस कि आनन्दपुर शहर को छोड़ते समय, इस अमूल्य खजाने का एक हिस्सा सरसा नदी की भेंट हो गया और गुरु साहब और उनके दरबारी कवियों की कुछ बची हुई रचनाओं के अलावा हमारे पास कुछ भी नहीं है। यद्यपि उस नदी से उनकी कुछ रचनाएं कुछ व्यक्तियों को मिलीं, परन्तु नहीं के बराबर।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महान ऐतिहासिक सिख कवि भाई सन्तोखसिंह के अनुसार गुरुजी के कवियों की और गुरुजी की रचनाओं (जो कि बारीक अक्षरों में लिखी गयी थीं) का वजन लगभग नौ मन होगा—

'तिन कवियन वाणी रची,
लिख कागज तुलवाय
नौ मन होय तोल महिं,
सूखम लिखित निखाय।'

(सूरजप्रकाश)

आज भी गुरुजी की याद में अन्य मौकों के अलावा, जब भी गुरुजी का जन्म-दिवस मनाया जाता है, सभी बड़े गुरुद्वारों में कवि-दरबार का आयोजन होता है और कवियों का सम्मान किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री रामप्रकाश गुप्त

१५. भाषागत विशेषताएँ

पंजाबेतर हिन्दी-प्रदेश में जब कविता मध्ययुगीन पुनीत वातावरण से निकल रीतिकालीन सभा-कक्षों में प्रविष्ट हो रही थी, पंजाब में उस समय हिन्दी-कविता दशमेश गुरु गोविंदसिंह के रूप में एक ऐसे स्वनाम-धन्य बहुमुखी व्यक्तित्व से उपकृत हो रही थी, जिसमें कबीर, नानक, सूर और तुलसी तथा नरपति और भूषण एक साथ साकार हो उठे थे। गुरु गोविन्दसिंह के अलौकिक व्यक्तित्व-सागर में विविध सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक धाराओं का अद्भुत संगम था। भारत के पूर्वांचल—पुरातन भारतीय गौरव के अमर साक्ष्य—पाटलिपुत्र में उनका अवतरण हुआ तथा शैशव और बाल्यावस्था में वही पावन-क्षेत्र उनका क्रीडांगन रहा। किशोरवय में पदार्पण करते ही वे भारत के पश्चिमोत्तरांचल—पंजाब में पधारे और इसी वीर भूमि को उन्होंने राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक जागरण का कर्म-क्षेत्र बनाया। भारत की भौगोलिक विविधता के साथ ही उन्होंने सामाजिक और साहित्यिक विविधताओं का भी साक्षात्कार बहुत शीघ्र कर लिया था। वे न केवल उच्च कोटि के भक्त, वीर एवं कवि थे, अपितु अनेक कवियों के प्रेरक, आश्रयदाता और पोषक भी थे। उनके इस सबल दिव्य व्यक्तित्व ने हिन्दी काव्य को विविधरूपता प्रदान की, जिसका प्रत्यक्ष प्रतिफलन उनकी काव्या-भाषा में भी दृष्टिगोचर होता है।

गुरु गोविन्दसिंहजी से पूर्व पंजाब में रचित गरुवाणी का भाषा रूप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'सधुक्कड़ी' से होता हुआ हिन्दी-पंजाबी मिश्रित रूप धारण कर चुका था, गुरु गोविंदसिंहजी ने इस 'मिश्रित' रूप को त्यागकर शुद्ध हिन्दी (ब्रज) को अपनी काव्य भाषा बनाया। इसका अभिप्राय यह नहीं कि उन्होंने हिन्दीतर अथवा ब्रजेतर भाषा में काव्य रचना की ही नहीं, उनका काव्य ब्रज के अतिरिक्त खड़ी बोली, पंजाबी और फारसी पर भी उनके पूर्णाधिपत्य का परिचायक है, किन्तु शुद्ध हिन्दी (ब्रज) से तात्पर्य यह है कि दशमेश गुरु ने पूर्व रचित गुरु-वाणी की भांति एक साथ एकाधिक भाषाओं के मिश्रित प्रयोग की परिपाटी त्यागकर शुद्धत: एक भाषा के प्रयोग की शैली अपनाई। यद्यपि उनके काव्य में किसी एक—हिन्दी अथवा पंजाबी भाषा का प्रयोग होते हुए भी, यत्किंचित मात्रा में अन्य भाषा शब्दावली पूर्णत: बहिष्कृत नहीं है, जल-प्रवाह में अनायास बह जाने वाले तृण-पाषाणवत् अन्य भाषाओं का पुट उनके काव्य में अवश्य है जो कि हर काल के हर समय के कवि की विशेषता है, तथापि उनके काव्य विशेष की भाषा प्रकृत्या कोई एक ही भाषा रही है। उदाहरणत: उनके कई 'स्तोत्र' संस्कृत में, 'चौबीस अवतार' ब्रज में, 'शब्द हजारे' और 'चण्डी दी वार' पंजाबी में तथा 'ज़फरनामा' फारसी में रचित काव्य कोटि में परिगणनीय है। यथा :

संस्कृत—

नमस्त्वं अकाले। नमस्त्वं कृपाले
नमस्त्वं अरूपे। नमस्त्वं अनूपे।
नमस्त्वं अकर्मे। नमस्त्वं अधर्मे।
नमस्त्वं अनामं। नमस्त्वं अधामं।

ब्रज—

ए हो लला नन्दलाल कहे सब
ग्वारनियां अति, मैन भरी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हमरे संग आवहु खेल करो
न कछू मन भीतरि संक करी।
नैन नवाह कछू मुसकाई के
भौंह दुऊ करि टेढ धरी।
मन यूँ उपजी उपमा रस की
मनु कान्ह के कंठ ही फांस परी।

(कृष्णावतार छं० ५२६)

पंजाबी—

मित्र पियारे नूँ हाल मुरीदां दा कहणा
तुम बिन रोग रजाइयां दा ओढण,
नाग निवासा दे रेहणा।

(शब्द हज़ारे)

उपल लय जोद्धे मारू वज्जिआ।
बदल ज्यं महिषासुर रण विच गज्जिआ।

(चंडी दी वार), छं० १६

फारसी—

कमाले करामात कायम करीमा।
रजा बख्श राजकु राह को रहीमा।
शहनशाह खूबी दिहो रहनमूँ।
के बेगूनवे चुनु चूँ बे नमूं।

(ज़फरनामा)

उपर्युक्त विविध भाषा उदाहरणों के अतिरिक्त दशमेशजी के काव्य में खड़ी बोली, अवधी तथा सिन्धी भाषा का भी यत्र-तत्र स्वच्छन्द प्रयोग मिलता है। यह प्रयोग धारा-प्रवाह-रूप में न होकर प्रायः किसी एक पद्य अथवा पद्य खंड के कतिपय शब्द समूहों तक सीमित है। यथा—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खड़ी बोली—

जौन जगत मे वहूँ आया ।
याते सभों अचीत बताया ।

(मत्स्यावतार, छं० १३)

जो इह पेट न काहू होता ।
राव रंक काहू को कहता ।

(वही, छं० २५)

अवधी—

सबै बात मानी यहे काम कीनो ।

(कच्छपावतार, छं० ३)

काल रूप भगवान मनैवो ।
ता महि लीन जगति सब लेवो ।

(मत्स्यावतार, छं० ३४)

सिन्धी—

वावे पत्र आणा मेही मिले
क्या न जाना सहियारो जी ।
साडे पास आवणा ही आवणा ।

(पाख्यान चरित्र)

इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंहजी की काव्य-भाषा में अद्‌भुत विविध-रूपता के दर्शन होते हैं, किन्तु इस विविधता में भी सांस्कृतिक और भावात्मक समानता का एक सूत्र विद्यमान है, वह है—ब्रजभाषा। दशमेश गुरु से पूर्व कई सदियों से हिन्दी-काव्य में ब्रजभाषा का प्रयोग हो रहा था। वैष्णव भावना के संसर्ग से धीरे-धीरे ब्रजभाषा का प्रसार व्यापक होता चला गया। सिख गुरुओं की काव्य-रचनाओं में भी ब्रजभाषा का प्रयोग एक सांस्कृतिक अनिवार्यता के रूप में हुआ ; क्योंकि वे सारे देश

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में सांस्कृतिक एकता बनाए रखने के प्रबल इच्छुक थे। इस दृष्टि से गुरु गोविंदसिंहजी की काव्य-भाषा की समीक्षा मुख्यतः ब्रजभाषा की प्रवृत्ति को सामने रखकर करनी उचित होगी।

भाषा अन्तरानुभूतियों को साकार रूप प्रदान करती है। उसकी यह क्षमता शब्द और अर्थ के सुन्दर संयोजन पर निर्भर है। शब्द-सौन्दर्य के अन्तर्गत सुष्ठु शब्द चयन, उपयुक्त वर्ण-योजना तथा नादात्मकता का महत्व है और अर्थ-सौन्दर्य के अन्तर्गत बिम्ब विधान, चित्रोपमता एवं अर्थ ध्वनन सम्बन्धीय सामर्थ्य का विवेचन अपेक्षित है। गुण-रीति, शब्द-शक्ति, ध्वनि और मुहावरों, लोकोक्तियों का सुसंगत प्रयोग भाषा की उभयगत अर्थात् शब्दार्थमयी गरिमा का द्योतक है। गुरु गोविन्दसिंहजी की काव्य-भाषा इन सभी उपकरणों से सुचारुरूपेण समन्वित है। यहाँ संक्षेपतः इसका दिग्दर्शन प्रस्तुत है।

शब्द-भण्डार

गुरु गोविन्दसिंह बहुभाषी पंडित एवं विविधतामयी वाणी के धनी थे। तदनुसार उनकी काव्य-भाषा का शब्द-भण्डार अत्यंत विशाल एवं समृद्ध है। उन्होंने तत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का सूक्ष्म एवं सफल प्रयोग किया है। उदाहरणत :

तत्सम—अकाम, अनाम, अनूप, अरूप, आनन, कराल, करुणालय, कुंजर, कुण्ड, कोप, दामिनी, धान, निशाचर, नीर, पावक, महिमा, मृग, मीन, वपु, शृंग, सुधर्म आदि।

तद्भव—अज्ज, कज्जल, खग्ग, चक्क, जुद्ध, जूह, तिच्छ, दिच्छ, पखान, बिज्जु, प्रभ, हान आदि।

देशज—छुरी, ढोलक, पंडा, भवासन, घुग्घू, लुगाई आदि।

विदेशी—अदा, ताफताब, आलम, आसमान, इमान, कसाई, करीम, कार्फी, खफा, ख्वाब, गरीब, जफा, जुल्फें, तोप, दफा, फिराक् मैन, महताब, रहम, शराब, सफा आदि।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शब्द-शक्ति—

दशमेश गुरु का काव्य प्राय: अभिधा-प्रधान है। उन जैसे सरल प्रकृति, सन्त-स्वभाव और समाज-सुधारक जननायक की वाणी में लाक्षणिकता अथवा व्यंजना व्यापार की न्यूनता स्वाभाविक है। यद्यपि लोकोक्तियों, मुहावरों के मूल में लक्षणा शब्द-शक्ति विद्यमान रहती है, किन्तु इनका परम्परागत प्रचलन होने के कारण ये बोलचाल का सामान्य रूप धारण कर लेते हैं और इनका प्रयोग अभिधात्मक-सा बन जाता है। अत: इनमें निहित लाक्षणिकता कवि-कर्म-कौशल के अन्तर्गत नहीं रखी जा सकती। इन्हें छोड़कर गुरुजी के काव्य में लक्षणा शब्द-शक्ति का प्रयोग स्वल्प हुआ है।

अभिधा शब्द-शक्ति का कोई उदाहरण यहाँ उद्धृत करना अपेक्षित नहीं, क्योंकि गुरुजी द्वारा रचित प्रत्येक पद्य में अभिधा विद्यमान है। लक्षणा और व्यंजना के उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

लक्षणा—

(क) चन्दन-सी चंपावती, चन्द्रमा-सी चन्द्रागिर,
कीरती तिहारी की उजियारी सो हियतु है।

(अकालऽस्तुति, छन्द २६५)

कीर्ति अरूप है, उसका चन्दनवत् सुगंधित अथवा चन्द्रमा सम श्वेत होना सम्भव नहीं। लक्षणा द्वारा चन्दन-चन्द्रवत् आनन्द प्रदान करने की क्षमता ही यहाँ अभिप्रेत है।

(ख) मेरू करो तृण ते मुहि जाहिं,
गरीब निवाज न दूसर तो सों।

(विचित्र नाटक, काल-स्तुति, छन्द ९२)

यहाँ तिनके से पर्वत बना देने का लाक्षणिक अर्थ हीन को महान बना देना है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यंजना—

मन ते तन तेज चल्यो जगमात सौं
दामन जानु चले घन में ।

(चंडी चरित्र, उक्ति-विलास, छन्द ४८)

'मन अथवा तन के तेज का 'चलना' अर्थ यहाँ उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। व्यंग्यार्थ यह है कि जगदम्बिका दुर्गा का प्रभाव सर्वत्र विद्युत् प्रकाश की भाँति छा गया।

गुण-वृत्ति-रीति—

दशमेशजी की काव्य-भाषा में ओज-प्रसाद-माधुर्य—तीनों गुणों एवं तदनुसार परुषा, उपनागरिका और कोमल वृत्ति तथा गौड़ी, वैदर्भी और पांचाली रीति का यथावसर सुष्ठु प्रयोग मिलता है। एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

ओज—

श्री रघुराज सरासन ले रिस ठान धनी रणबाण प्रहारे।
वीरन मार दुसार गये सर अम्बर तें बरसे जनु जोरे ॥
वालि गजी रथ साज गिरे घर पत्र अनेक सु कौन गनावे।
फागुन पौ प्रचंड बहैं बन पत्रन ते जमु पत्र उडारे ॥

(रामावतार, छन्द ७०६)

प्रसाद—

दुहूँ जुद्ध कीना रणमाहीं।
तीसर अवसर तहाँ कोउ नाहीं ॥
केतक मास मच्ची तहं जुद्धा।
जालंधर हुए सिव पर कुद्धा ॥

(जालंधर अवतार, छन्द २४)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माधुर्य—

मौलसिरी और रामकली शुभ सारंग भावन साथ बसावे।
जैतसिरी अरु शुद्ध मलार बिलावल की धुन कूक सुनावे ।।
ले मुरली अपने कर कान्ह किधौ अतिही हित साथ बजावे।
पैन चलैन रहें जमुना थिर मोहि रहे धुनि जो सुन पावे ।।

(कृष्णावतार, छन्द ४५७)

भाषा सौष्ठव की विधायक अन्य प्रमुख विशेषताओं की एक झलक भी यहाँ प्रस्तुत है।

अर्थ-ध्वनन—

सु घूम घूम ही।
करत सैन भूम ही ।।

(सूर्यावतार, छन्द ५)

नाद-सौन्दर्य—

पारा सी पलाऊ गढ़ रूपा कैसी रामपुर,
सौरा सी सुरंगाबाद नीके रही भूल के।
चंपा सी चदेरी कोट चांदनी सी चांद गढ़,
कीरति तिहारी रही मालती सी फूल के।

(अकाल-स्तुति छन्द २६४)

चित्रोपमता—

फेर सराखत को गंहिकै, कर बीर हों तिन पान न मंगे।
घायल चूम परे रण माहि कराहत हैं गिरसे गिर लंगे ।।
सूरन के तन कांचन साथ परे घर माए उठे तह बंगे।
जानौ दवा बन मांझ लगे तरु कीरन के दौरे भुजंगे ।।

वर्ण-योजना—

देव समै मिलिकै इन ठौर सुअच्छत चन्दन कुंकुम दीनो।
तत्छन लच्छन देके प्रदच्छन टीका सुचंडिके भाल में दीनो ।।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ता छनको उपज्यो तहं माव इहै कविने मन में लख लीनो।
मानहुं चंद के मंडल में शुभ मंगल आन प्रवेशन कीनो ।।

(चण्डी-चरित्र, उक्ति-विलास छन्द २२६)

मुहावरे—

अंग जलना—रोष मर्‌यौ सब अंग जर्‌यौ मुख रत कर्‌यौ जुग नैन नचाए।

कुएं में पड़ना—हाथ दीपक लै महापसु मधि कूप परंता।

खेत रहना—लरिके मरिके गिरि खेत रहै।

गाल बजाना—गाल बजाय-बजाय के दूदंभ ज्यों घन सावन के घहराए।

जलती आग में घी डालना—मनो तपी अति पावक ऊपर काहू बुझाइवे को घृत डार्‌यो।

तमाशा देखना—बैर बढ़ाई लड़ाइ सुरासुर आपहि देखत बैठ तमासा।

दांत से दांत बजाना—ठाढ़ि भई कर लेके गदा अति रोस के दांत सों दांत बजावे।

नाक काटना—सो न बरै अति तब। नाक कटाई गई गृह को सब।

सीस धुनना—सीस धुन इक ऐसे कहै हमहू जदुबीर के काम न आए।

निष्कर्ष यह है कि गुरु गोविन्दसिंहजी की काव्य-भाषा का अध्ययन उन्हें जहाँ एक समर्थ कवि सिद्ध करता है, वहाँ इससे उनका प्रकांड पांडित्य तथा विविध भाषाओं पर पूर्णाधिपत्य भी सिद्ध है। आवश्यकता इस बात की है कि काव्य-मंडन-शिल्प और भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से उनके काव्य का समग्र अध्ययन किया जाए और उनके काव्य-सागर की विविध मुक्ताओं को विद्वत्समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रो० सतबीरसिंह

१६. गुरुजी की विरासत

गुरु तेगबहादुरजी को ११ नवम्बर सन् १६७५ ई० के दिन औरंगजेब के हुक्म से चांदनी चौक (दिल्ली) के साथ वाली मस्जिद के पास शहीद कर दिया गया। अपने इष्ट गुरु का शीश तन से अलग देखकर भी, किसी को गुरु का नाम लेने का साहस न हुआ कि मृतक शरीर के भागों को वहाँ से हटा सके। आंधी और अंधेरे से लाभ उठाते हुए भाई जैताजी ने शीश और भाई गुरदित्ता और भाई ऊदासिंह ने भाउ लक्खीसाह की सहायता से, तीन बैलगाड़ियों में लाद कर, अपने मकान में तन रखकर, आग लगा संस्कार कर दिया। उस समय गुरु गोविन्दसिंहजी की आयु ९ साल की भी नहीं हुई थी। बहुत-से कष्टों का सामना गुरुगोविन्दसिंहजी को करना पड़ा। विरोधी पक्ष में कई शक्तियां काम कर रही थीं, उनके पक्ष में भी। पर, यह एक ठोस सच्चाई है कि गुरु तेगबहादुर की शहादत ने देश-भर और विशेष रूप से पंजाब में एक नया जज़्बा प्रदान कर दिया था। परन्तु यह भी सत्य है कि औरंगजेब की नीति और अत्याचारों के सामने सीधा उठने के लिये कोई तैयार नहीं था। गुरु गोविन्दसिंहजी ने निराशा में से आशा को जन्म देकर जिस प्रकार कौम को खड़ा किया, यह उन्हीं की देन है। इसलिए उचित यह होगा कि आपके समूचे जीवन पर दृष्टि डालने से पूर्व, उस समय की पक्ष और विरोधी शक्तियों का अध्ययन कर लिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पक्ष में

गुरु गोविन्दसिंहजी के पास गत दो सौ नौ वर्ष का बहुमूल्य अतीत था। जिस महल में गुरु गोविन्दसिंहजी बैठे थे, उसकी नींव, दीवार तथा छत—पूर्ववर्ती नौ गुरुओं ने बनायी थी, उसको संवारने तथा मज़बूत करने का कार्य आपने किया। यदुनाथ सरकार का यह कथन है कि गुरु गोविन्द-सिंहजी ने नींव का ही प्रयोग किया और ढाँचा अपना बनाया, बिलकुल निर्मूल है। गुरुजी न तो कोई अलग सम्प्रदाय बना रहे थे और न किसी अलग सम्प्रदाय से उनका सम्बन्ध था। वे उस 'संगत' तथा 'शब्द' के सहारे चल रहे थे, जिसका उल्लेख श्री गुरु नानकदेवजी ने किया था। ज्योति वही काम कर रही थी और मुक्ति में कोई अन्तर नहीं हो पाया था। विभिन्नता तो हर ऊपरी समझवाला देखता और कहता है। कोई विरला ही आंतरिक तत्त्व को जान सका था। गुरुजी ने स्वयं कहा है—

"भिन्न-भिन्न सबहूँ कर जाना।
एक जीत किनहू पहचाना।
साथ न लखा मूड़ न वाइयौ।"

गुरु गोविन्दसिंह तथा उनका कार्य उस उन्नति का परिणाम था, जो शुरू से होती आयी थी। जिस खेती ने गुरु गोविन्दसिंहजी के समय फल दिया, उसका बीजारोपण गुरु नानकदेवजी ने किया था और उनके पूर्व गुरुओं ने उसे सींचा था। जिस तेज ने खालसा की शान फैलाई थी, उसे तैयार भले ही गुरु गोविन्दसिंहजी ने किया था, परन्तु उसे फौलाद गुरु नानकदेवजी कर गये थे। इस सम्बन्ध में कनिंघम के शब्द भी सुनने योग्य हैं—"यह महान कार्य गुरु नानकदेवजी का ही था, जिन्होंने सुधार के सच्चे और ऊँचे सिद्धान्त ढूंढे और उनका प्रयोग किया तथा ऐसी चौड़ी नींव रखी, जिस कारण उन्होंने अपने देशवासियों के हृदयों में एक ज्वाला भड़का दी और कार्य-रूप में इस धार्मिक सिद्धान्त को सामाजिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एवं राजनीतिक रूप दिया कि जाति और धार्मिक आशाएँ तथा राजनीतिक-सामाजिक अधिकारों के सम्बन्ध में निर्धन-से-निर्धन, नीच-से-नीच धनवान-से-धनवान और ऊँचे-से-ऊँचे सभी समान हैं।"

गुरु नानकदेवजी से लेकर गुरु तेगबहादुरजी तक ऐसे ही वातावरण के निर्माण में जुटे रहे और उन्होंने जनता की रुचियों और हेय भावनाओं को परिमार्जित कर, उसमें दृढ़ आशावादिता पैदा कर एक बड़ा कार्य कर दिया था। केवल एक कलाकार के हाथ की ही आवश्यकता थी, जो उनको एक नियमित धारा में चला सके। गुरुजी ने ऐसा करके एक करामात कर दिखाई।

गुरु नानकजी ने तलवंडी में रहकर सबसे कीरत और किरत (कीर्ति और कृत) कर दिखलाई। स्वयं दूकानदारी, खेती, नौकरी तथा व्यापार करके भगवत स्तुति का ढंग बताया। वहां तलवंडी में ही जब आपके कानों में रबाब की आवाज़ आई, तो आपने रबाब बजाने वाले से कहा, "रबाब भली बजाते हो, क्या नाम है तुम्हारा?" तब रबाब बजाने वाले ने कहा, "दाना, लोग मिरासी भी कहते हैं।" आपने उसी समय कहा: "शब्द मिलाकर राम को गाओ, तो मरदाना कहलाओ।" मरदाना (वीर) वही है, जिसके गगन में सदैव नगाड़े (दमामे) बजते रहें। ज्ञान की तो कोई सीमा है, शब्द की कोई सीमा नहीं। सो जीवन को सफल करने के लिए शब्द का सहारा ही आवश्यक बताया।

आपने निर्बलों में अथाह बल का संचार किया। सी० एच० पेन के अनुसार—"आपके उपदेश अत्यन्त प्रभाशाली थे; क्योंकि आपने वह बात समझ ली थी, जो दूसरे सुधारकों ने नहीं समझी थी।" कर्म तो वही जीवित रह सकता है, जो जीवन के ढग सिखाये। यह न सिखाये कि दुनिया में सुचारु ढंग से रहना किस प्रकार है। यह न सिखाये कि दुर्गुणों से बचना किस प्रकार है। यह सिखाये कि दुर्गुणों का मुकाबला करके सफल किस प्रकार होना है। सिखों के लिए यह आवश्वक हो गया कि धर्म, एकता, सचाई को (पाखंड, आडम्बर, प्रेम, फूट, ऊँच-नीच के भेद

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

झूठ-द्रोह आदि को छोड़कर) सदा प्रमुख रखें और इन्हें केवल राजनीतिक समानता पर श्रेष्ठ जाने। गुरु नानकदेवजी ने उन्हें यह भी बतलाया कि सच्ची इबादत हमारी भीतरी शक्तियों को जागृत करती है और हमें वह कला प्रदान करती है, जिससे हम सामाजिक स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीय सचाई को प्राप्त कर सकते हैं। उसी सच्ची पूजा को लेकर ही दशम गुरु ने सामाजिक स्वतंत्रता और राष्ट्रीय ऊँचाई हमें दी।

सारे भारत में ऐसे पुरुषों की संगत कायम हो गयी, जो शब्द को ही सर्वश्रेष्ठ मानती और माया-मोह से अपने को सर्वदा दूर रखती थी। गुरु नानक ने गुरु-गद्दी भाई लहणाजी को देकर एक सुन्दर क्रान्ति की, पुत्र का अधिकार और बड़े के अधिकार के स्थान पर योग्य का अधिकार और सेवक की पदवी की कसौटी चलाई।

गुरु अंगददेवजी ने गुरुमुखी अक्षरों का प्रचार स्वयं पुस्तकें लिखकर किया। इतिहास-वाणी की सुरक्षा की। शरीरों को हृष्ट-पुष्ट रखने के लिए धर्म-मंदिर के साथ मल्लअखाड़ा की रचना भी की। हुमायूं को नम्रता से कहा—"रहने भी दो, अभी थककर आई है और दरवेशों पर उठाना धर्म नहीं।" 'ज़फरनामा' का प्रथम कांड लिखा। यह बात तो गुरु गोविन्दसिंहजी ने बाद में कही थी। औरंगजेब यह तेरी कौन मर्दानगी है कि चिनगारी बुझा ली, इस प्रकार तो जोश की अग्नि को और भड़का दिया गया है।

"त्रिह मरवी कि अखगर खामोशां कनी,
कि अतश दमौरां दरोजा कनी।"

गुरु अमरदासजी ने संगत के संग 'पंगत' को आवश्यक किया। आपने इकट्ठे बैठकर भोजन करने की रीति चलाई। कहां घर के दस जीव और अनेक चौके और अब उसके स्थान पर हजारों जीव और चौका सिर्फ एक 'पंगत'। एक छुआछूत थी, जो कभी न खत्म होने वाली थी, वह भी जल की। बावली (सीढ़ियों वाला कुआं) बनाकर एक ही स्थान पर पानी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पिला, एक जगह स्नान करा और एक ही मार्ग पर चला, एक सीढ़ी पर पैर रखवाकर सच में 'चौरासी' काट दी। चौरासी तब तक की थी, जब तक मनुष्य ने मनुष्य की कद्र नहीं जानी थी। जब उसने हर मनुष्य के अंदर परम तत्त्व को पहचान लिया, तब वह परम मनुष्य हो गया। बावली की जल-धारा वैशाखी वाले दिन फटी थी, सबने खूब स्नान किया और छक कर जल पिया और विरोधियों की मार से बचे। यह वैशाखी ही थी, जब गुरु गोविन्दसिंहजी ने सबको एक ही बाटे से अमृत-पान कराकर वाहे गुरु का अपना ही (खालसा) बनाया था। गुरु अमरदासजी ने जलघाट प्राप्त करने वाले भाई माणक को अपना कहा था और गुरु गोविन्दसिंहजी ने शीश हथेली पर रखने वालों को प्यारा कहा था। और फिर मुक्ता। गुरुजी ने सिख-समाज में जजिया, पात्र टैक्स, तीर्थ, भ्रम, पाखंड और लूट-मार, छीना-झपटी का कोई स्थान न रहने दिया।

गुरु गोविन्दसिंहजी ने गद्दी पर बैठते ही दो तलवारें पहनीं। सिख जहांगीर को नीचा करने लग गये, मरजीवड़ों की एक सेना-सी तैयार हो गयी। हर स्वतन्त्रता-प्रेमी ने गुरु घर में ही अपने कल्याण का मार्ग देखा। पताका, दुर्ग, तथा सिंहासन ने काम में उत्साह भर दिया। युद्ध हुए, परन्तु सभी स्वाभिमान के लिए। कभी ज़र, जन या ज़मीन के लिए युद्ध नहीं हुआ। किसी भी युद्ध के उपरान्त लूटमार नहीं की गयी। स्वाभिमान के लिए मरने का उत्साह सजग हुआ। जहाँ युद्ध लड़े गये थे, वहाँ के लोग उसमें भाग लेकर प्रसन्नता महसूस करते थे। अमृतसर से लेकर कुरुक्षेत्र तक धर्मयुद्ध का चाव दिखाई देता था। प्रचार के काम में गुरुजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र गुरुदित्ता को नियुक्त किया और चार केन्द्र कायम किए। गुरु ज्योति और आशय का प्रकाश रामेश्वरम् से लेकर काबुल तक हुआ। प्रचार की स्थिति यह थी कि मुहसन धानी समकालीन विद्वान इतिहासकार ने लिखा है कि देश-भर में कोई भी ऐसा नगर न होगा, जहाँ सिख न हों अथवा गुरुघर के अनुयायी न हों। राजपूतों ने तो गुरुजी की ज्योति सामने करके अपनी जानों की आहुति तक दे डाली।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु हरि रायजी ने इस सिखी पौधे की रक्षा कुशलतापूर्वक की। औरंगजेब की चढ़ती बाढ़ में बह जाने से बचाये रखा और सिखी के प्राथमिक सिद्धान्तों की रूपरेखा भी बनाई। जब धर्मी हकीकत राय के दादा नन्दलाल पुरी आपके पास आए और आपसे उपदेश माँगा, तब आपने फरमाया : "एक टोपी नहीं पहननी, दूसरे तम्बाकू नहीं पीना और तीसरे केश नहीं कटाना है।" यह आने वाले कल की तैयारी थी। माँझा, दुआबा और फिर मालवा की ओर आपकी कृपा-दृष्टि हुई। मालवा सिखों का घर बना।

गुरु हरि कृष्णजी ने दृढ़ता बनाये रखी। कौम को यह विश्वास हो गया कि ज्योति की ही सारी शक्ति है। वही ज्योति किसी बूढ़े में प्रवेश कर उसे "झखड़ बाउ न डोलई, पर्वत मैदान" बना देती है और वही नौ साल के बालक में प्रवेश करके उसे अहिल, अटल तथा दृढ़ स्वरूप प्रदान करती है। गुरु हरि कृष्णजी ने स्वतन्त्र नेतृत्व करके गद्दी गुरु तेगबहादुरजी को दी।

गुरु तेगबहादुरजी ने गुरु नानक की भाँति सारे देश में भ्रमण करके निर्भयता और दृढ़ता का प्रचार किया। उनका मुख्य उद्देश्य था—"भय काहु को देत नहि, न भय मानत आनि।" अर्थात्, डरने वाला कायर है और डराने वाला जाबर। 'हलेमी राज' ही सिखों का आदर्श है। यदि कोई राजनैतिक शक्ति अपने हाथ में लेकर प्रजा और गौ पर आक्रमण करता है, तो गुरु रामे का कार्य है कि उसकी रक्षा करे। दीन के हेतु लड़े और अंग-अग कट जाने पर भी रणभूमि में डटा रहे। गुरु तेगबहादुरजी ने ऐसा ही किया। कलियुग में जहाँ स्वार्थ का ही पहरा है, वहाँ दूसरे के जनेऊ-तिलक के लिए शीश दे दिया। शीश तो दे दिया, परन्तु सिरह नहीं दिया। हिन्दुस्तान झंझोड़ा गया और गुरु गोविन्दसिंहजी ने जज़बे का प्रयोग करके कौम का निर्माण किया।

गुरु नानकजी से लेकर गुरु तेगबहादुर तक हिन्दुस्तान में संगत स्थापित हो चुकी थी और एक सूत्र में बंधी हुई थी। आज्ञा में ही रहने की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

महिमा से परिचित थी। गुरु वचन पर तन-मन-धन न्यौछावर करने में प्रसन्नता समझती थी। इस बहुमूल्य विरासत के होते हुए गुरु गोविन्द-सिंहजी का किसी बड़े-से-बड़े साम्राज्य से लोहा लेना कोई चकित करने वाली बात नहीं है।

औरंगजेब को सिंहासन पर बैठे करीब सत्रह वर्ष हो गये थे। राज्य के पहले वर्ष औरंगजेब को कभी युसुफजाई, कभी खटिक और कभी अफ-रीद तंग करते रहे। दोनों भाइयों के साथ नित्य झगड़ों में ही उसके कई वर्ष बीत गये।

पंजाब में—सन् १६७५ से सन् १६९६—इन बीस वर्षों में करीब बीस गवर्नर उसने बदले। लाहौर की ओर से खतरे की कोई सम्भावना नहीं थी और इसीलिए औरंगजेब दूर बैठा था। जब शाहजादा मुअज्ज़म पंजाब आया, तो कुछ स्थिरता आई। पर इधर गुरु गोविन्दसिंहजी ने भी सब शक्ति सम्भाल ली थी और 'खालसा' पंथ के सृजन की शुरूआत कर रहे थे। फिर लाहौर की अधीनता कोई मानता नहीं था। जब औरंगजेब ने सख्त हिदायतें भेजीं, तब कहीं जम्मू, लाहौर और सरहिन्द ने एकत्रित होकर आनन्दपुर पर भारी आक्रमण किया। इतिहासकार अर्नेस्ट स्मिथ का कथन ठीक है कि दक्कन न केवल औरंगजेब के शरीर की कब्र बना बल्कि उसके राज्य की भी।

गुरुजी के पक्ष में कुछ मुसलमान

औरंगजेब एक कट्टर मुसलमान था। सिया-सूफी तथा उदारहृदय के मुसलमानों को भी वह इसी बुरी दृष्टि से देखता था, जैसा कि हिन्दुओं को। मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद ने ठीक ही लिखा है—"औरंगजेब अपने हर कार्य का उत्तर सहज ही अल्लाह के दरबार में देगा। पर सरमद को उसने कत्ल क्यों किया, इसका उत्तर उसके पास नहीं होगा।" (याद रहे मौलानाजी की अपनी कब्र भी सरमद की कब्र के निकट जामा मस्जिद के करीब ही बनी है।)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सभी न्यायप्रिय मुसलमान औरंगजेब के कर्मों को बुरा कहते थे। श्री जी० टी० पिलर ने लिखा है कि मक्के के बड़े मुफ़्ती ने औरंगजेब द्वारा भेजे गये कासद को मुंह लगाने से ही इंकार कर दिया था। परंतु यह सौभाग्य की बात थी कि पद-दलित तथा न्यायप्रिय मुसलमान ने गुरु गोविन्दसिंहजी से सम्बन्ध बनाये और उनकी सहायता के लिए भी आगे आये। पठानों से औरंगजेब किसी हद तक घृणा करता था। पठानों ने गुरु महाराज की शरण ली। हफीज आदिम, सैफ खान, भीखनशाह, बुद्धूशाह जी सैद बेग, कालेखान, मैंसखान और पीर वहाउद्दीन मदार कन्नौज आदि उनके मुख्य चेले थे।

शताब्दियों से दलित हिन्दू-जाति ने भी गुरुजी की शरण में ही अपना कल्याण समझा। 'रंघरेटे' जो राजाओं द्वारा 'रंक' करके तिरस्कृत किये जाते थे, वही गुरुजी के सम्पर्क में आकर न केवल सिख ही कहलाये, बल्कि 'गुरु के बेटे' भी बने। मांझा, मालवा और दुआबा के जाटों ने अपना एक-एक बेटा गुरु-हित निकालकर गुरु-सेना को मजबूत किया। यह था विरसा, जिसको गुरुजी ने सम्भाल कर संवारा और ऐसी थी दशा, जिसमें कि उन्होंने अपने-आपको डालकर कौम-निर्माण के कार्य को आगे बढ़ाया।

विरोध में

जहाँ पक्ष में यह अवस्था थी, वहाँ विरोध भी कम नहीं था। पहाड़ी राजे गुरुजी के अस्तित्व को ही अपने लिए खतरा समझते थे। हर समय वे झगड़ते ही रहते थे। सच्ची बात तो यह है कि गुरुजी को पहली लड़ाई पहाड़ी राजाओं से ही लड़नी पड़ी। राजा भीमचन्द्र गुरुतेगबहादुरजी को भी डरा-धमका चुका था। उनकी शहादत के बाद उनका विरोध कुछ देर के लिए कम तो हुआ, पर वे जल्द ही गुरु गोविन्दसिंहजी को धर्म-नाशक कहने लग गए। श्री इन्दु भूषण बनर्जी लिखते हैं : "यह कोई चकित करने वाली बात नहीं है कि पहाड़ी राजे गुरुजी से घृणा करते थे। गुरुजी उस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धर्म के प्रतिनिधि थे, जो लोगों में भ्रातृ-भाव, मैत्री-भाव तथा समदर्शिता के विचार भर रहा था। गुरुजी के बहुत से सेवक जाट थे, जिनको कि राजपूत नीच समझते थे। पहाड़ी राजाओं की राजनीति विशेषतया सामाजिक उच्चता तथा जातीय अकड़बाज़ी ने उन्हें गुरु गोविन्दसिंहजी से दूर रखा।' पहाड़ी राजे दिल्ली की आज्ञा से हर आक्रमण के लिए तैयार हो गये। गुरुजी को आखिर तक सिरफिरों का अगुआ कहते रहे। दूसरे कुछ विशाल हृदय वाले मुसलमान गुरुजी की सहायता भी कर रहे थे और साथ चलते भी थे, तब कट्टर पन्थियों ने भी गुरुजी के विरोध की शपथ ले ली। पंजाब में सुन्नियों का ज़ोर था। वह सिखों के घर आदि लूटते और आनन्दपुर की ओर आते हुए सिखों को धमकाते थे तथा लूट भी लेते थे। औरंगजेब की ओर से नियत किये हुए मौलाने और सेना सिखों का शिकार करती थी। फौजदारी मुकदमे तथा सिपाही और चौधरी सिखों का पीछा किया करते थे। कई बार उन्होंने विद्रोह का झंडा भी खड़ा किया। वे गुरु गोविन्दसिंहजी को इस्लाम का दुश्मन कहते थे। आनन्दपुर के चौथे युद्ध में दस लाख सेना का एकत्रित हो जाना, इसी घृणा को प्रकट करता है।

तीसरे, मसंदों के साथ-साथ गुरु-घर से अलग किये गये सम्बन्धी भी उनकी शक्ति का विरोध करते थे। पृथ्वीचन्द्र के पौत्र और रिश्तेदार इस विरोध में अग्रसर थे। धीरमल तथा रामराय ने विरोध को नित्य प्रति का कर्म ही बना लिया था। पहाड़ी राजाओं को रामराय उकसा रहे थे। मसन्द लोग, जो आमोद-प्रमोद का जीवन व्यतीत करने के आदी हो गये थे, गुरुजी के विरुद्ध प्रचार कर रहे थे और सही स्थान आनन्दपुर में भेंट के लिए उन्हें पहुंचने नहीं देते थे। उनके प्रचार का मूल आधार था कि गुरु गोविन्दसिंहजी ने गुरु नानकजी के पथ को त्याग दिया है। वे उतनी देर तक अपने घृणित पथ से बाज नहीं आये, जब तक कड़े हाथों से उनको दबाया न गया। गुरुजी के सेवक मसंदों को बहुत खलते थे। आम हिन्दू

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जनता गुरुजी को समझाने से असमर्थ थी। उनमें जीवन अहसास ही खत्म हो गया था।

गुरु गोविन्दसिंहजी ने विरोधी शक्तियों को पछाड़ कर, पक्ष में कार्य कर रही शक्तियों का सहारा लेकर, आने वाले वर्षों में एक स्वस्थ तथा अलग कौम तैयार कर दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री भवानीशंकर त्रिवेदी

१७. रससिद्ध कवि

गुरु गोविंदसिंहजी वीराग्रणी महापुरुष, महान नेता, समाज-सुधारक और राष्ट्र-रक्षक सेनानी के साथ-साथ हिन्दी के महान् कवि भी थे। जैसे साहस, पराक्रम और वीरता के साथ युद्ध-क्षेत्र में अपनी अलौकिक वीरता का उन्होंने परिचय दिया था, उनकी वैसी ही प्रखर प्रतिभा ने साहित्य के क्षेत्र में भी विहार किया है। जितने अधिक विषयों, रसों, छन्दों और शैलियों में उन्होंने लिखा है, उनकी रचनाओं का जितना अधिक व्यापक क्षेत्र था, उतने अधिक व्यापक क्षेत्र में हिन्दी के इने-गिने कवियों की प्रतिभा ही पहुंच पाई थी। रीति काल तक साहित्य की जिन-जिन प्रवृत्तियों और विधाओं का प्रचलन हिन्दी-साहित्य में हो चुका था, गुरुजी ने उन सब विषयों और विधाओं पर कलम चलाई और बड़ी सफलता के साथ चलाई। वीर गाथात्मक काव्यों की कवित्त-छप्पय शैली, भक्ति-काव्य की निर्गुण और सगुण दोनों शैलियाँ, रीति काव्य की शृंगारिक परम्परा यहां तक कि नायिका भेद या 'तिरिया चरित्र' भी, सन्तों की वाणी, कृष्ण काव्य चर्चा और छन्दों का वैविध्य इन सबके एकत्र दर्शन करने हों, तो गुरु गोविन्दसिंहजी के 'दशम ग्रन्थ' को देख जाइये। गुरुजी की कृतियों में वीरता, भक्ति और शृंगार की त्रिवेणी की जैसी पावन निर्मल धारा प्रवाहित हो रही है, वह केवल उन्हीं की रचनाओं में मिल सकती है, अन्यत्र कहीं नहीं। उनके काव्यों में वीर रस की अवतारणा स्वानुभूत और परम्परा प्राप्त, इन दोनों रूपों में हुई है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'विचित्र नाटक' नामक ग्रंथ में गुरुजी की आत्मकथा के साथ ही साथ स्वानुभूत वीरता का जैसा हृदयहारी वर्णन हुआ है, वह वास्तव में अनुपम है। 'चण्डी चरित्र' आदि उनकी दूसरी रचनाओं में परम्परा-प्राप्त वीर रस की उत्ताल तरंगें उद्वेलित हो उठी हैं। 'चौबीस अवतार' में चौबीसों अवतारों की लीला का संक्षिप्त किंतु सजीव चित्र अंकित किया गया है। 'पाख्यान चरित्र' जो कि 'तिरिया चरित्र' के नाम से भी प्रसिद्ध है, स्त्री-पुरुषों के चरित्रों को लेकर लिखा गया है। 'ज़फ़रनामा' फारसी भाषा में लिखा हुआ एक पद्य-बद्ध पत्र है, जो औरंगजेब को लिखा गया था।

विस्तृत प्रतिभा क्षेत्र

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरुजी की प्रतिभा का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है। यद्यपि उन्होंने 'चण्डी दी वार' जैसी कुछ रचनाएँ पंजाबी में भी लिखी हैं और फारसी का उक्त 'ज़फ़रनामा' भी पर्याप्त प्रौढ है, तथापि उनके काव्यों की मुख्य भाषा ब्रजभाषा ही है। गुरुजी ने मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के जितने अधिक छन्दों का प्रयोग अपने काव्यों में किया है, केशव को छोड़ हिन्दी के अन्य किसी कवि ने इतने अधिक छन्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में नहीं किया। पर केशव के यहां भी वह विषय-वैविध्य कहां जो गुरुजी की रचनाओं में है। इन रचनओं को देखते ही यह सिद्ध हो जाता है कि भाषा, विषय-शैली, छन्द-अलंकार आदि सभी दृष्टियों से गुरुजी हिन्दी के एक सर्वतोमुखी प्रतिभा-संपन्न महाकवि थे।

किन्तु जिस प्रकार जायसी की कृतियों और पांडुलिपियों के फारसी लिपि में उपलब्ध होने के कारण महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत जैसे महाकाव्य का सैकड़ों वर्षों तक वास्तविक मूल्यांकन न हो पाया और हिन्दी जगत उसके महत्त्व को तभी समझ सका जबकि पद्मावत देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुआ, ठीक वही स्थिति गुरु गोविंदसिंहजी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के महान काव्य-ग्रथों की है। केवल गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध होने के कारण गुरुजी का यह विशाल गौरवपूर्ण साहित्य जो नब्बे प्रतिशत ब्रजभाषा में लिखा गया है, अब तक हिन्दी संसार की आंखों से ओझल ही रहा है।

वीरता के अवतार

गुरुजी ने यों तो सभी रसों पर समान अधिकार से लिखा है पर उनका मन रमता था केवल वीर रस में। वे वीरता के मूर्तिमन्त अवतार थे। वीर रस का वर्णन करते-करते वे मानो तन्मय हो जाते थे। 'विचित्र नाटक' में उन्होंने यथावसर युद्धों के कैसी ओजस्वी भाषा में चित्र अंकित किये हैं, जिसकी एक बानगी देखिये—

तहां वीर बंके बकै आप मद्धं।
उठे सस्त्र ले ले मचा युद्ध सुद्धं॥
कहूं खप्परी खोल खण्डे अपारे।
नचैं वीर वेताल डोरु इकारे॥
परी कुट्ट कुट्टं रुलै तछ्छ मुच्छं।
रहे रोस डारे उभै उद्धं मुच्छं॥
कहूं खोपरी खोल खंगे खतरां।
कहूं खत्रियं खग्ग खेतं निखंगं॥
हलब्बी जुनब्बी सिरोही दुधारी।
वहीं कोप काती कृपाउ कटारी॥
कहूं सेहथीयं कहूं सुद्ध सेलं।
कहूं सेल सांगं भरी रेल पेलं॥

गुरुजी का 'चण्डी चरित्र' 'दुर्गा सप्तशती' के भावानुवाद का एक उदाहरण देखिये:—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लै कीर चण्डी कुबंड प्रचण्ड,
महाबरिबंड तबै इह कीनों।
एकहि बारि निहार हकार
सुधार विदार सभै दलू दीनो।
देत घने रण माहि हने
लखि स्रोन सने कवि इउ मन चीनो।
जिउ खगराज बड़ो अहिराज
मिराज के काट कटा करि लीनो॥

चण्डी-चरित्र की एक विशेषता यह है कि प्रत्येक व्यौरे के साथ नई से नई उपमा और उत्प्रेक्षाओं की झड़ी-सी लगा दी गई है। उसके आधार पर कह सकते हैं कि उपमा और उत्प्रेक्षा के क्षेत्र में भी गुरुजी अपने उपमान आप ही हैं।

गुरुजी की ये रचनायें हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। देवनागरी लिपि में इनका अब तक प्रकाशित न हो पाना हिन्दी जगत के लिये बहुत बड़ी क्षति है। गुरुजी की रचनायें शीघ्रातिशीघ्र विस्तृत व्याख्या-विवेचन के साथ देवनागरी लिपि में प्रकाशि होनी ही चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री शिवकुमार मिश्र

१८. सामाजिक जीवन पर प्रभाव

परम्परा से लेकर अब तक के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का इतिहास ऐसे अनेक महान् पुरुषों का ऋणी है, जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों के बावजूद लीक पर न चलकर, एक नए मार्ग पर चलने का जोखिम उठाकर हमारे सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन को नई गति दी है, परम्परागत धर्म तथा दर्शन को नया रूप देकर उन्हें पुनः जनता के विशाल भाग की विरासत बनाया है। किसी समय जैन तथा बौद्ध धर्मों ने परम्परागत धर्म, समाज तथा संस्कृति को नए आयाम तथा नए संदर्भ देकर यदि एक महान् ऐतिहासिक भूमिका अदा की थी, तो मध्य युग में सिक्ख धर्म का अभ्युदय भी एक ऐसी ही महान् ऐतिहासिक घटना है।

यदि आतंक, दमन, तथा अत्याचारों का यह लम्बा सिलसिला न होता, बहुत सम्भव था कि सिक्ख धर्म केवल धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में ही नए परिवर्तनों का वाहक बनता, परन्तु अन्याय, तथा दमन के ये गहरे संदर्भ ही थे, जिन्होंने उसे ही एक नए साँचे में ढल जाने को विवश किया। सिक्ख धर्म के इस कायाकल्प को भारतीय इतिहास की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना माना जाएगा। सिक्ख धर्म के इस नए संस्कार के पीछे इस्लाम-विरोध या ऐसी ही अन्य कोई संकीर्ण भावना न थी (हमें यह न भूलना चाहिए कि गुरु गोविन्दसिंह जिन्होंने सिक्ख धर्म को इस नए रूप में ढाला मुख्यतः उसी कड़ी के एक रत्न थे, जिससे गुरु नानक, गुरु तेगबहादुर तथा ऐसे ही अन्य संत पुरुषों तथा गुरुओं का सम्बन्ध था,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिनके लिए मनुष्यता तथा मानव प्रेम से बढ़कर न कोई धर्म था, और न नैतिकता) सिक्ख धर्म के इस नए संस्कार के मूल में एक विशेष धर्म तथा संस्कृति और सामान्यतः अन्य धर्मों तथा जातियों पर निरन्तर होने वाले अत्याचारों की वह लम्बी शृंखला थी, जिसे औरंगजेब और उसकी कट्टर नीतियों ने जन्म दिया था और जो दृढ़तर होती जा रही थी। गुरु गोविन्दसिंह के लिए औरंगजेब प्रतीक था, उस सारे आतंक तथा दमन का जिसके चक्र में उस समय अधिकांश मनुष्यता को पीसा जा रहा था। वे औरंगजेब के अत्याचारी शासन के विरुद्ध थे, उसकी संकीर्ण नीतियों के विरोधी थे, अन्याय, अत्याचार तथा दमन के शत्रु थे, न कि मुसलमानों के या कि इस्लाम के। उनके सम्मुख उस बहुसंख्यक, जनसामान्य, उसके धर्म तथा संस्कृति की रक्षा का प्रश्न था जिसे योजना बनाकर नेस्तनाबूद कर देने की साजिश चल रही थी। इस महान् दायित्व को निबाहने के लिए ही वे धर्म तथा उपासना की वेदी से, हाथ में तलवार लेकर रण भूमि में उतरे, और कहना न होगा कि उनके इस नए रूप ने गिरते हुए निराश तथा भग्नहृदय तत्कालीन समाज को न केवल एक आस्था तथा विश्वास से मण्डित किया, उसे विपरीत परिस्थितियों में भी अन्याय, अत्याचार तथा दमन के बावजूद आक्रान्ता के सम्मुख साहस तथा संकल्प के साथ खड़ा हो सकने योग्य बनाया।

गुरु गोविन्दसिंह का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष, अन्याय, अत्याचार, दमन तथा आतंकवाद के खिलाफ उनके द्वारा छेड़ी गई छोटी-बड़ी लड़ाइयों का लम्बा सिलसिला, अपने पवित्र तथा महान संकल्प की सिद्धि के लिए भयानक से भयानक, तन और मन को तोड़कर रख देने वाली परिस्थितियों के बीच भी उनका साहस, धैर्य और निष्ठा, जान से भी अधिक प्यारे पुत्रों, सम्बन्धियों और साथियों के मार्मिक बलिदान के बावजूद कभी न टूटने वाला उनका दृढ़ मनोरथ, अनीति तथा असत्य के सम्मुख कभी न झुकने वाली उनकी बान, वे उदाहरण हैं जो न केवल गुरु के महान व्यक्तित्व के साक्षी हैं, ये इस बात के भी प्रमाण हैं कि यदि गुरु के रूप में इतने महान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यक्तित्व का अवतरण उस समय न हुआ होता, तो भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन-आस्था के आधारों से विच्छिन्न, हो सकता है कि टूटकर बिखर भी गया होता। गुरु के अवतरण ने सामान्य जनता को नई चेतना देकर उसकी जिजीविषा को स्थिर रखा, उसे जीने का नया स्वाद दिया, उसे अपने अस्तित्व को नए सिरे से प्रमाणित करने का अवसर प्रदान किया। गुरु के व्यक्तित्व का, उनके त्याग और बलिदान का, उनके महान आचरण का ही यह प्रभाव था कि लाखों की संख्या में जन-साधारण उनके अनुयायी बने और कुत्तों की मौत मरने के बजाय वीरों का जीवन और वीरों की मृत्यु प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपना तन, मन और धन गुरु के चरणों पर अर्पित कर दिया। ये तथ्य गुरु गोविन्दसिंह को एक महान इतिहास पुरुष का गौरव देते हैं। सच ही वे ऐसे इतिहास-पुरुष थे।

सिक्ख धर्म की स्थापना तो गुरु नानकदेव ने की थी, परन्तु खालसा को जन्म देकर गुरु गोविन्दसिंह ने जैसे परम्परा से चली आती हुई सामाजिक जीवन की धारा को नया और क्रांतिकारी मोड़ दिया। सबसे पहले तो गुरु ने सिक्ख धर्म के भीतर ही क्रमशः फैलने वाली अतिवादी भूमिकाओं की ओर दृष्टि डाली। गुरु अर्जुन देव ने 'मसन्दों' की जिस संस्था को जन्म दिया था, गुरु नानकदेव के संदेश का प्रचार करने के स्थान पर कालान्तर में वह गरीब जनता के लिए पीड़क सिद्ध हुई। 'मसन्दों' के विलास, आतंक तथा अत्याचारों की कहानियाँ जब गुरु के कानों तक पहुंचीं उन्होंने व्यापक जाँच-पड़ताल करने के पश्चात् न केवल इस संस्था को एकदम समाप्त कर देने का आदेश दिया, दोषी व्यक्तियों को कठोर दण्ड भी दिए। सिक्ख धर्म के भीतर लग रहे घुन से इस प्रकार धर्म को मुक्त करके उन्होंने व्यापक लोकप्रियता अर्जित की। सिक्ख धर्म के भीतर ही जो अनेक प्रकार के सम्प्रदाय बन चुके थे, उन्हें भी गुरु ने समाप्त किया और इस प्रकार उसे फिर संगठित किया। हिन्दुओं की पुरानी वर्णाश्रम व्यवस्था में व्याप्त विकृतियों पर भी उनकी दृष्टि गई। उन्होंने अनुभव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किया कि इस व्यवस्था का आधार लेकर किस प्रकार तथाकथित उच्च वर्ण के लोगों द्वारा निम्न कहे जाने वाले वर्णों का शोषण किया गया है और जाति-व्यवस्था का वह विकृत रूप किस प्रकार समाज की सहज और स्वस्थ प्रगति में बाधक है। यह सब देख-समझकर ही संतों की परम्परा में उन्होंने भी उसपर कड़े प्रहार किए। 'संगत' तथा 'पंगत' जैसे विधान पहले भी किये गए थे, परन्तु गुरु गोविन्दसिंह ने इस विषबेलि को जड़ से उखाड़ डालने का संकल्प किया और अपने कार्य में काफी दूर तक सफल भी हुए। सन् १६९९ ई० को वैसाखी के दिन अपने अनुयायियों के विशाल समूह के समक्ष उन्होने सिक्ख धर्म को नई आकृति दी और सिक्खों को 'खालसा' कहकर उन्हें नए पंथ में नए दायित्यों के लिए कटिबद्ध किया। सिक्खों की परम्परागत आचार संहिता में भी उन्होंने अनेक नए तत्त्व जोड़े और इस प्रकार परम्परागत सामाजिक रीति-रिवाजों तथा नियमों में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का सूत्रपात किया। अपने अनुयायियों को जाति-पांति के बन्धनों की कतई अवमानना करने, तथा धर्म और शास्त्र के रूढ़िवादी बन्धनों का निर्ममतापूर्वक छोड़ने का आदेश देते हुए 'कन्या हत्या' तथा 'सती' जैसी पुरानी तथा अमानवीय हिन्दू प्रथाओं के विरुद्ध भी आवाज़ उठाई। उपस्थित व्यक्तियों में भारी संख्या में लोगों ने सामने आकर गुरु के नए आदेशों का पालन करने का व्रत लिया। प्रायः समस्त इतिहासकारों ने 'खालसा' की सृष्टि को न केवल सिक्ख धर्म तथा इतिहास की वरन् भारतीय राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन की भी एक युगांत-कारी घटना माना है। गुरुगोविन्दसिंह की धारणा थी कि जनता के पास धर्म तो है, पर राष्ट्रीयता की सच्ची भावना नहीं है। उनका विचार था कि इस विशाल जन-समाज को राष्ट्रीय एकता सूत्र में तब तक नहीं बांधा जा सकता, जब तक कि राष्ट्रीयता को ही उनका धर्म न बना दिया जाय।

ऐसा कहा जाता है कि गुरु ने यह भी कहा कि हिन्दू धर्म तथा समाज के ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण पान, चूना, सुपारी और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कत्थे की तरह ही परस्पर घुल-मिलकर एक रंग हो जाएं। उन्होंने उक्त वर्णों के साथ सम्बद्ध ऊँच-नीच भावना को एकदम नजरंदाज करते हुए निम्न से निम्न वर्ण के व्यक्तित्व को भी अपना सम्पूर्ण स्नेह देते हुए अपने धर्म में दीक्षित किया। इतिहास साक्षी है कि गुरु के साथ कंधे से-कंधा मिलाकर लड़ने और बलिदान देने वालों में यह तथाकथित निम्न वर्ण सबसे आगे रहा।

गुरु यद्यपि जीवन-भर युद्धरत रहे, परन्तु इससे उनके धार्मिक दृष्टि-कोण तथा संत व्यक्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आवश्यकता पड़ने पर ही उन्होंने हाथ में तलवार उठाई। उन्होंने छोटे-बड़े तमाम युद्ध जीते और एक बड़े भू-भाग को औरंगजेब के अत्याचारी शासन से मुक्त किया, परन्तु उन्होंने अपने लिए कभी कुछ नहीं किया। यह तथ्य गुरु की नैतिकता का साक्षी है, जिसने उनके अनुयायियों को भी नई दृष्टि दी।

गुरु गोविंदसिंह का सारा चिन्तन, दर्शन तथा मानव-प्रेम की दृढ़ भित्ति पर आधारित है। धर्म की रूढ़ियों, अंधविश्वासों तथा जर्जर मान्यताओं के प्रति जनसाधारण का ध्यान आकर्षित कर और उनका उन्मूलन करने के मार्ग को प्रशस्त कर उन्होंने जनता को धर्म तथा जीवन का नया आधार दिया। उनके विचारों से निम्न वर्ण की जनता को आस्था की देदीप्यमान किरणें प्राप्त हुईं। निर्गुण निराकार एक ईश्वर की सत्ता का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने अनावश्यक कर्मकांडों तथा आडंबरों से भी जनसमाज को मुक्ति दिलाई। गुरु के ये विचार तत्कालीन धार्मिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक जीवन में एक नई दिशा तथा नए आचरण के सूचक हैं।

गुरु केवल एक अप्रतिम योद्धा तथा सन्त पुरुष ही न थे, कला तथा साहित्य को भी उनका प्रदेय अत्यन्त मूल्यवान है। वे एक गम्भीर अध्येता थे। संस्कृत, फारसी तथा हिन्दी और उसकी तमाम प्रादेशिक बोलियों पर उनका समान अधिकार था। उनके ग्रंथ जितना ही अपनी धार्मिक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा दार्शनिक दृष्टि के लिये विख्यात हैं उनका साहित्यिक मूल्य भी उतना ही अनमोल है। उनकी अधिकांश रचनाएं प्रबंधात्मक हैं, जो न केवल रचना-कौशल की दृष्टि से वरन् अपने भावनातत्त्व में भी, कवित्व-शक्ति पर गुरु का अखण्ड अधिकार सूचित करती है। उन्होंने कई भाषाओं में अपनी कृतियों की रचना की है, जो भाषाओं पर उनके व्यापक अधिकार के साथ उनकी उदार दृष्टि का भी परिचय देती हैं। उनकी इन कृतियों का विचार-पक्ष भी गुरु की प्रकांड मेधा का उदाहरण है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी कृतियों ने जन-सामान्य को कितनी गहरी प्रेरणा प्रदान की है। साहित्य को गुरु का योगदान भारतीय साहित्य की समृद्ध परम्परा में एक मज़बूत कड़ी है। हिन्दी तथा पंजाबी साहित्य में तो गुरु के कृतित्व का मूल्यांकन हुआ है, आवश्यकता भारतीय साहित्य की संत-परम्परा में उसके मूल्यांकन की है। साहित्य के अतिरिक्त अन्य कलाओं के क्षेत्र में भी गुरु के योगदान को इतिहासकारों ने मुक्त कण्ठ से मान्यता दी है।

भारतीय सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन को गुरु का प्रदेय सदैव एक महान् विरासत के रूप में माना जायेगा। उन्हें गत हुए यद्यपि सदियां बीत चुकी हैं, परन्तु उनका संदेश भारत के जन-जन के मन में आज भी अंकित है। उनकी प्रेरणाएँ आज भी उतनी ही समर्थ हैं, जितनी तब थीं जब एक गिरती हुई जाति को उठाने और उसे शक्ति के पुंज में बदल देने लिए इतिहास तथा समय के तकाज़े पर पहली बार वह गूँजा था। मानवता के महान् उपासक, मानव समता के प्रबल उद्घोषक गरु गोविन्दसिंह के इस कथन का स्मरण करते हुए उन्हें हम प्रणाम करते हैं :—

देहरा मसीत सोई पूजा ओ नमाज़ ओई,
मानस सब एक पै, अनेक को भ्रमाउ है।
देवता अदेव जच्छ गन्धर्व तुरक हिन्दू,
न्यारे-न्यारे देसन के भैस को प्रभाउ है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान,
खाक बाद आतश औ आब की रलाउ हैं।
अल्लाह अभेषु सोई पुरान औ कुरान ओई,
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

डॉ० बनारसीप्रसाद

१९. गुरुजी का अंतिम समय

गुरु गोविन्दसिंह अपने जीवन के अंतिम दिनों में एक दार्शनिक और विचारक के रूप में और अपने रचनात्मक गुणों के लिए विख्यात हुए। इससे पहले का उनका जीवन असीम और अनन्त संघर्ष और अनेक दुखांत घटनाओं का जीवन रहा, जिनमें साधारण कोटि का कोई भी व्यक्ति साहस खोकर बैठ जाता पर वे असाधारण महापुरुष थे। कभी न टूटने वाला उनका धैर्य और अपने लक्ष्य में दृढ़ विश्वास, जैसे गुणों के कारण वे दिनों-दिन बढ़ती हुई कठिनाइयों और निराशा में भी चट्टान की तरह अडिग रहे। असफलताओं ने उन्हें और भी कार्यरत रहने को प्रेरित किया और असफलताओं ने उनमें साहसिक कार्यों के लिए विश्वास उत्पन्न किया। अवसर हाथ से निकल जाने पर भी वे चुपचाप बैठे हुए घटनाओं को देखते रहने में विश्वास नहीं करते थे, वे अवसर उत्पन्न कर फिर काम करने में विश्वास रखते थे। उनमें दिव्य शक्ति और पवित्र महत्त्वाकांक्षाओं का एक अभूतपूर्व मिश्रण था।

धर्म और धर्म-निरपेक्षता जैसी मौलिक समस्याओं के प्रति उनकी दृष्टि का मूल्यांकन करने के लिए भारत की उस समय की समूची परिस्थितियों पर दृष्टिपात करना बहुत आवश्यक है। जिस युग में गुरु गोविन्दसिंह हुए वह संघर्ष और विरोधाभास का युग था। विस्तारवाद और विघटन और संकीर्णवाद तथा विश्ववाद दोनों ही प्रवृत्तियाँ उस युग में मौजूद थीं। रूढ़िवाद और उदार प्रवृत्तियाँ भी थीं और आदर्श तथा वास्तविकता एक-दूसरे से बहुत दूर जा रही थीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस समय की परिस्थितियों में रहकर ही गुरु गोविन्दसिंह को कार्य करना था। उन्हें मसन्दियों के सुसुप्त विरोध के अतिरिक्त मिनाओ, धिरमाली, राम रईस और सोंधियों का भी सामना करना पड़ा। उनकी गतिविधियों ने पर्वतीय सरदारों को जिन्होंने उन्हें संरक्षण दे रखा था, भी चौंका दिया। गुरु गोविन्दसिंह का सम्बन्ध हिन्दू-धर्म की प्रमुख धारा से धीरे-धीरे टूटता जा रहा था। फलत. हिन्दू-समाज में उनके प्रति घृणा का भाव उभर रहा था। इन्हीं कठिनाइयों में उन्हें एक ऐसी जाति को सुदृढ़ बनाने का मार्ग चुनना था, जो आंतरिक कलह और वाह्य आक्रमणों का शिकार हो रही थी। वे अटूट साहस के साथ एक नये सिख-धर्म की बुनियाद रखने और थकी-हारी जनता की सुषुप्त शक्तियों को जगाने जैसे कठिन कार्य में जुट गये।

चमकौर की दूसरी लड़ाई में उनके विरुद्ध काफी बड़ी शक्तियाँ लगी हुई थीं। यद्यपि वे शत्रु को परास्त करने में सफल नहीं हो सके, किन्तु उन्होंने शत्रु पक्ष के मस्तिष्क में भय बैठा दिया। अपने मुट्ठी भर साथियों के साथ वे मच्चीवारा को बच निकले जहाँ कुछ समय रहकर वे दमदमा की ओर बढ़े। इसी स्थान पर उन्होंने प्रसिद्ध ज़फरनामा की रचना की। ज़फरनामा सम्राट औरंगजेब को कविता में लिखा गया एक पत्र है। इस पत्र के विषय और शैली की असाधारणता के कारण इसके अभिप्राय के विषय में मतभेद है। संत गोविन्दसिंह ने सम्राट को गन्दे और चुभने वाले शब्दों में दोषी करार दिया है। उन्होंने उसे 'चालाक और धूर्त लोमड़ी' की संज्ञा दी है और उससे अपने लिखित वचन को पूरा करने को कहा गया है। उन्होंने सम्राट् के रहन-सहन के ढंग की आलोचला की है और उसके हाकिमों द्वारा किये गये कार्यों के लिए उसकी निन्दा की है। गुरु गोविन्द सिंह ने बादशाह को भावी संकट के प्रति सावधान किया है। गुरुजी सम्राट् से कहते हैं, 'सावधान हो जाओ, जिस प्रकार तुमने लोगों पर बहुत अत्याचार किया है, उसी प्रकार खालसा भी तुम्हें दुखी करेंगे। अब तुम्हारे प्रतिशोध का दिन आ गया है। ईश्वर तुमसे बहुत अप्रसन्न है।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्राट् औरंगजेब को दक्षिण में सैनिक, राजनीतिक और मानसिक संकटों में ग्रस्त देखकर ही कदाचित् गुरु गोविन्दसिंह ने उसे गाली-गलौच दी और दैवी प्रकोप का भय दिखाया। बादशाह कंठित और निराश था। उसकी योजनाएँ और चालें सभी चूर-चूर हो गई थीं। जिस साम्राज्य को उसने अथक परिश्रम से बनाया और बढ़ाया था, उसी का पतन वह देख रहा था। बादशाह की आत्मा को जगाने और विषम परिस्थितियों की वास्तविकता के प्रति उसे सजग करने का जिससे कि वह सत्य को देख सके इससे अधिक उपयुक्त अवसर और कौन-सा हो सकता था ? यदि गुरु गोविन्दसिंह का यही उद्देश्य था, तो निस्सन्देह इसमें उन्हें आशातीत सफलता मिली।

किन्तु उनके पुराने शत्रु वजीर खाँ ने उन्हें चैन न लेने दी, विशेषकर ऐसे समय जब कि गुरुजी के अनुयायियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही थी। परिस्थिति के इस प्रकार बदलने और गुरुजी की गतिविधियों के पुनः आरम्भ हो जाने के परिणामस्वरूप पंजाब में गड़बड़ होने की आशंका से मुगल गवर्नर ने गुरुजी को परास्त करने के लिए बहुत बड़ी सेना भेजी। गुरुजी खिद्राना की ओर बढ़े। यहाँ भीषण युद्ध हुआ। शत्रु की संख्या अधिक होने पर भी विजय गुरुजी की ही हुई। गुरुजी के चालीस अनुयायी और उनके नेता मोहनसिंह काम आए। ये सामूहिक रूप से 'मुक्त' कहलाये। जहाँ इन वीरों ने प्राण दिये थे, बाद में वह स्थान मुक्तेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जान पड़ता है पत्र ने बादशाह के मस्तिष्क पर इच्छित प्रभाव डाला; क्योंकि पत्र मिलने के बाद बादशाह ने पंजाब में अपने हाकिमों को आदेश कर दिया कि वे गुरु गोविन्दसिंह के साथ कोई छेड़-छाड़ न करें। शायद इस असंभावित अनुकूल संकेत ने गुरुजी के हृदय में भी ऐसी प्रतिक्रिया पैदा की। उन्होंने औरंगजेब के पास दक्षिण जाने का निश्चय किया। इस निश्चय के पीछे शायद दो कारण रहे हों : प्रथम यह कि गुरुजी बादशाह से निकट सम्पर्क स्थापित कर उसे उत्तर भारत की परिस्थितियों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से अवगत कराना चाहते थे। दूसरा अभिप्राय कदाचित यह रहा हो कि वे उस क्षेत्र में जहाँ औरंगजेब के विरुद्ध भावनाएँ भड़क रही थीं, अपने मत का प्रचार करना चाहते थे। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि यह निश्चय करते समय गुरुजी को अपनी स्थिति की दृढ़ता और अपने कार्य की सफलता का पूरा-पूरा विश्वास था। उत्तर भारत में उन्होंने अपना कार्य लगभग पूरा कर लिया था।

'लोहे' को पवित्र बताने में गुरुजी का अभिप्राय यह था कि उनके अनुयायी भी लोह पुरुष और दृढ़ निश्चयी हों। उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा कि वे तलवार को ईश्वर और ईश्वर को तलवार मानें। दूसरे शब्दों में, सिख को अपनी तलवार और ईश्वर का ही भरोसा करना चाहिए। वास्तव में गुरु गोविन्दसिंह एक नए आदर्श से प्रेरित थे और उन्होंने आत्मविश्वास की एक नयी भावना पैदा की। उन्होंने केवल व्यक्तियों को ही पुनर्जीवित नहीं किया बल्कि एक समूची जाति को जो भयंकर से भयंकर तूफानों का सामना कर सकती है।

यद्यपि गुरु गोविन्दसिंह सिख-जाति के एकछत्र नेता थे; किन्तु उन्होंने अपने को तानाशाह होने से बचाये रखने में पूरी-पूरी सावधानी बरती। पंच प्यारे बनाने के पश्चात् उन्होंने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की कि वे उन्हें भी ठीक उसी प्रकार दीक्षा दें, जिस प्रकार उन्होंने उन्हें दीक्षा दी थी। इसके बाद उन्होंने घोषणा की जो इतनी लोकतंत्रीय है कि शायद ही किसी दूसरे धर्म में इतनी लोकतंत्रीय घोषणा हो। उन्होंने कहा, 'जहाँ-कहीं भी पांच सिख होंगे, वहीं मेरी आत्मा मौजूद होगी।' इस प्रकार शुद्ध की गई सिख-जाति अब खालसा कहलायी। गुरुजी खालिसा थे और खालसा गुरु। दोनों एक-दूसरे में घुल गये। खालसा भावना और कार्य दोनों में लोकतन्त्र था। इसमें सुसंगति और सुव्यवस्थित भाई-चारे की भावना थी।

एक बात उल्लेखनीय है कि यद्यपि 'ज़फरनामा' में औरंगजेब के सम्राट होने की हैसियत से निन्दा की गई है, किन्तु उसमें इस्लाम या मुसलमानों के विरुद्ध कोई बात नहीं है। गुरुजी के ये कथन कि 'मंदिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और मस्जिद एक हैं, हिन्दुओं की पूजा और मुसलमानों की नमाज एक ही बात है, सब मनुष्य एक समान हैं, ईश्वर ने ही सबको बनाया है, इस मत का खण्डन करते हैं कि वे इस्लाम विरोधी और मुसलमान विरोधी थे। इन शब्दों से कहीं कोई इस्लाम या मुसलमान विरोधी भावना नहीं टपकती। ये शब्द एक संत की चोट खाई भावनाओं को प्रकट करते हैं, जो स्वयं निरन्तर कठिनाइयों का शिकार रहा और अधिकारियों से न्याय की माँग करता रहा। वास्तव में गुरुजी मेल-मिलाप के दूत थे, घृणा के नहीं।

गुरु गोविन्दसिंह ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष बड़ी साहित्यिक गतिविधियों में व्यतीत किये। रूढ़ियों के बीच वे पले थे। उन्होंने संत-साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उन्हें फारसी, संस्कृत, पंजाबी और हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान था। विशाल ग्रन्थ एवं रचनाओं में जो उनकी लिखी बताई जाती हैं, अनेक अपभ्रंश बोलियों और भाषाओं का सुन्दर मिश्रण है। सामूहिक रूप से ये सब कृतियाँ दशम ग्रन्थ या 'दशवें पादशाह का ग्रन्थ' के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह चार भाषाओं में लिखी गई अट्ठारह रचनाओं का समूह है, किन्तु इनमें से कोई भी शुद्ध किस्म का नहीं है। वे अपने भावों की अभिव्यक्ति करने में सिद्धहस्त थे और वे जानते थे कि अपने विचारों को किस प्रकार प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया जाए।

गुरुजी कवि और धर्म-गुरु के दुर्लभ सम्मिश्रण थे। धर्मगुरु होने के नाते उन्होंने अपने अनुयायियों के लिए आचरण संहिता बनाई। उन्होंने एक ईश्वर में विश्वास की पुर्नस्थापना की। उन्होंने कहा, 'जो उसका नाम जपता है जिसकी जोत अमर है, जो ईश्वर के अतिरिक्त और किसी का विचार नहीं करता, जिसके हृदय में पूर्ण ओम का प्रकाश रहता है, वही खालसा का विशुद्ध सदस्य माना जाएगा। उन्होंने अपने प्रखर व्यक्तित्व से अपने अनुयायियों के अन्दर भक्ति-भावना को पुनर्जीवित किया। उन्होंने पुराने सिद्धान्तों को अधिक क्रियात्मक बनाया। हिन्दू धर्म से उनका अलगाव वाह्य अधिक और भावना में कम था। अपकी रचनाओं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में उन्होंने बार-बार वेदों और पुराणों का उल्लेख किया है। उन्होंने इन ग्रन्थों की खिल्ली नहीं उड़ाई, वरन् उनसे प्रेरणा प्राप्त की।

धर्म गुरु की अपेक्षा वे कवि अधिक थे। उन्होंने अपने को सहृदयता की गूंजती हुई वाणी में व्यक्त किया है। उन्होंने एक जीवन-दर्शन का निर्माण किया है जो उनके अपने-अपने पूर्ववर्तियों के समान अनुभव पर आधारित है। उनका दर्शन सौंदर्य के प्रति अनुभूति को विनष्ट नहीं करता। उनकी कल्पना की उड़ान पवित्रता की ऊँचाई तक पहुंचती है।

कदाचित् विचित्र नाटक उनकी काव्य-निपुणता का सर्वोत्तम प्रमाण है। यह रचनात्मक और कथात्मक तत्त्वों का सम्मिश्रण है। इसका आरंभ 'लोहे' की स्तुति से होता है।

"मैं पवित्र तलवार के सम्मुख प्रेम और श्रद्धा से नत मस्तक होता हूं। मेरी सहायता करो कि मैं अपने इस कार्य को पूरा कर सकूं।" इसके बाद असंख्य ऐसी कल्पनाएँ आती हैं, जिनमें ईश्वर अपने हाथ में बाण और भाला लिए हुए है। इनसे कवि के ऊपर पौराणिक कथाओं का प्रभाव परिलक्षित होता है।

गुरु गोविन्दसिंह को संत-साहित्य का पूरा-पूरा ज्ञान था, यह निर्विवाद है। उनकी कविता को ये पंक्तियाँ—

ईश्वर की कृपा यदि हो, तो पंगु पर्वत लांघ सकता है।

तुलसीदास की इन पंक्तियों की याद दिलाती हैं—

(मूक होय वाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन
जासु कृपा सो दयालु, द्रवतु सकल कलीमल दहन)

उनका चौबीस अवतारों का वर्णन जो यद्यपि मुख्यतः पुराणों पर आधारित है, एकदम भिन्न दृष्टिकोण से चित्रित है।

वह उन्हें दोष नहीं देते। उनमें विश्वास करने को निरर्थक समझते हैं, किन्तु फिर भी वे वैष्णवी भावना के लोभ को नहीं छोड़ सके। वे कहते हैं प्रेम करने से, ईश्वर मिल सकता है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपनी व्यंगात्मक शैली में गुरुजी ने कृष्ण के गोपीनाथ स्वरूप की खिल्ली उड़ाई है। वे कहते हैं, यदि कृष्ण गोपीनाथ थे, तो सभी गूजर गोपीनाथ समझे जायेंगे और सभी ग्वाले गोपीनाथ। क्या इस व्यंग्य द्वारा वे अपने नये मतावलम्बियों को, जो अधिकतर व्रज से आए थे, अपने अहम् को खिल्ली नहीं जगा रहे थे ?

किन्तु उन्होंने कृष्ण अवतार के अपने वर्णन में प्रकृति का चित्रण इस प्रकार किया है—

नदी के किनारे पर चाँदी की सफेदी

जैसी चाँदनी रात और नव मल्लिका की शय्या इसपर खिलते हुए पुष्प कुंज लता मंडप जैसे लगते हैं।

उन्होंने राधा और कृष्ण के मिलन का चित्रण गीत शैली में किया है। क्या इससे यह प्रकट नहीं होता कि गुरु गोविन्दसिंह के भीतर का कवि वैष्णव भावना से अनुप्राणित था ; किन्तु उनके अन्दर का धर्मगुरु लौह सज्जित योद्धा था ?

कुछ समय तक गुरुजी की दक्षिण जाने की योजना पूरी नहीं हो सकी। जब वे मेवाड़ पहुंचे, उन्हें औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला। अब वे वापिस हुए और पंजाब आए और राजकुमार मुअज्जम से मिले। मुअज्जम बाद में आगरे में राजगद्दी पर बैठा और बहादुरशाह का नाम अपनाया।

नये सम्राट ने गुरु गोविन्दसिंह के साथ उदार और सुन्दर व्यवहार किया। यहां तक कि कुछ कीमती पुरस्कार भी भेंट किये। इसके बाद गुरुजी सम्राट् के साथ राजस्थान और फिर दक्षिण गये। सितम्बर १७०८ में वे गोदावरी में नाँदेड़ पहुंचे। यहाँ उन्होंने अपना डेरा डाला और धर्म उपदेश देने लगे तथा अपने अनुयायी बनाने लगे। एक दिन जब वे अकेले थे और बिस्तर पर आराम कर रहे थे, अचानक एक पठान ने उनपर पेट में हमला किया। गुरुजी ने अपनी तलवार निकाल कर आक्रामक को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मार डाला। उनके घावों को टांके लगाए गए और जान पड़ता था कि वे ठीक हो रहे हैं; किंतु वास्तव में उनका अन्त समय आ रहा था। अपना अंत समय समीप जानकर गुरुजी ने अंतिम विदा लेने के लिए अपने अनुयायियों को एकत्र किया। उन्होंने उनसे कहा कि अब उनके साथ ही गुरुओं की परम्परा समाप्त होती है। अतः सिखों को ग्रंथ साहिब को ही दस गुरुओं का प्रतीक और अपना मार्गदर्शक समझना चाहिए। वे १८ अक्तूबर, सन् १७०८ की अर्द्धरात्रि को इस संसार से विदा हो गए।

गुरु गोविन्दसिंह ने तलवार और कलम को देवत्व का स्थान देकर सिख-जाति को एक नया और प्रेरणादायक सन्देश दिया है। उनका सुंदर चेहरा, नुकीला मुँह, सुगठित शरीर और मोहक आचरण, मानवीय गुण और मनुष्य-जाति के कल्याण की भावना ने उन्हें सभी का प्रिय बना दिया था। वे आदर, स्नेह और प्रेम के पात्र बन गए थे। उनका योद्धा संत का स्वरूप अद्वितीय है। उनका दृष्टिकोण एकदम सांस्कृतिक था ? किंतु संस्कृति का अर्थ वे वास्तविकता से रहित थोथे आदर्शवाद से नहीं लगाते थे। उनका अभिप्राय दोनों के समन्वय से था। विषम और कठिन गति-विधियों के बीच रहकर उन्होंने एक योगी का संतुलन प्राप्त कर लिया था। वे कहते हैं—

'अपने घर को बन समझो और उसमें निष्काम भाव से साधु की भांति रहो।' वास्तव में वे बड़े विचित्र योगी थे। उनकी महानता सत्ताई या सैनिक निपुणता के मापदण्ड से नहीं मापी जा सकती। दुर्भाग्यवश उन्हें अत्यधिक गलत समझा गया है। कुछ भी हो, यह स्वीकार करना होगा कि जो जोत उन्होंने अपने अनुयायियों को प्रदान की है, वह युगों-युगों से अधिकाधिक निखर कर चमक रही है। वह अमर ज्योति है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री गुरुदेवसिंह ग्रेवाल

२०. परमवीर

देह शिवा वर मोहि इहै, शुभ करमन ते कबहूं न टरों।
न डरों अरि सो जब जाय लरों, निसचै कर अपनी जीत करों।
अरु सिख हो अपने ही मन के, इह लालच हउ गण तउ उचरों।
जब आव की अउध निदान बने, अति ही रन में तब जूझ मरों।

यह ईश्वर के प्रति अर्चना है, जिसे श्री गोविन्दसिंह ने रचा और खालसा सेना का ध्येय बनाया। यह उस काल का प्रतीक स्वरूप भी है, जिसमें श्री गुरु गोविन्दसिंह ने उपदेश दिये और सामान्य भीरु समुदाय को लड़ाकू योद्धा में परिणत कर दिया, जो आज तक सैनिकों की ऊँची परम्परा को कायम रखे हुए हैं। जैसाकि उन्होंने स्वयं अपने जीवन-चरित्र 'विचित्र नाटक' में कहा है, उनका ध्यान धर्म-कर्म और शस्त्रों में रमता था और दस वर्ष की उम्र में उन्होंने पहली बार निजी क्षति को अनुपम धैर्यपूर्वक सहने में अपनी महानता प्रकट की। उनकी उम्र केवल दस वर्ष की ही थी, जब उनके पिता श्री गुरु गोविन्दसिंह को कश्मीर के ब्राह्मणों की रक्षा-हेतु अपने को बलिदान कर देने के लिए दिल्ली प्रस्थान करना पड़ा। गुरु गोविन्दसिंह ने अपने पिता को 'बल होआ बन्धन छुटे सब किछु होत उपाय, कोह नानक इक ओट हरि गज जयु होत सहाय' कहकर यह दिखलाया कि उन्हें परमात्मा और अपनी आंतरिक शक्ति पर कितना विश्वास था, और यह भी कि आदमी नैतिक एवं शारीरिक बल से ही सभी कठिनाइयों को जीत सकता है। साथ ही उन्होंने सर्व-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शक्तिमान ईश्वर की महानता में अपनी निष्ठा रखी, जो हमेशा शरणागत की रक्षा करते हैं।

शारीरिक बल, वीरता और साहस का मन्त्र जपाने के लिए श्री गुरु गोविन्दसिंह ने एक छोटे-से गाँव, जो अब आनन्दपुर साहब के नाम से प्रसिद्ध है, के निकट एकांत पर्वत पर बैठकर चिन्तन किया और अहिंसामूलक गुरु दर्शन के अनुयायी सिखों को एक लड़ाकू फौज में बदलने के लिए अपने पिता द्वारा दिये गये निर्देश के अनुसार संगठन किया।

इस विधि को अब पंथ बनावो,
सकल जगत में बहु विदतावो,
लाखों जग के नर इक थांय,
तिनमें मिले एक सिंह न जाय,
जयुं खरगन में बली तुरंग,

इसके पूर्व केवल गुरु हर गोविन्दसिंह छठे गुरु ने एक कृपान धारण किया था। गुरु गोविन्दसिंह ने मीरी और पीरी के दो कृपान पहनकर सभी सिखों को अपने झण्डे के नीचे लाने और उन्हें मुगल सम्राट् के अत्याचार से लड़ने के लिये एक प्रबल सैन्य दल में परिणत करने का निश्चय किया। चारों ओर खबर भेज दी गई और १२ अप्रैल, १६९९ को विभिन्न भागों से सिख, आनन्दपुर साहिब में आ पहुँचे तथा एक विस्तृत मैदान में अत्यन्त विशाल धार्मिक सभा हुई। सुबह की 'आसा दी वार' के बाद गुरु, शिविर से धूप में चमकती तलवार, हाथ में लिए निकले। सभा में पहुँचकर उन्होंने तलवार ऊँची करके गर्जन भरे स्वर में कहा—"क्या यहाँ उपस्थित मेरे प्यारे सिक्खों में कोई भी ऐसा है, जो एक महान् धार्मिक प्रयोजन में अपना सिर इस तलवार को अर्पित कर दे ?" बिलकुल खामोशी छा गई। सिक्खों के विशाल समूह में मौन व्याप्त था। गुरु ने अपनी मांग दुहराई। फिर भी खामोशी बनी रही और कोई जवाब नहीं मिला। फिर से गुरु ने एक सिर बलि चढ़ाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पुकार लगाई। तब एक आदमी हाथ जोड़े उठ खड़ा हुआ और बोला—"हे पिता, सच्चे धर्म के लिए मैं अपना सिर अर्पित करता हूं।" ये थे लाहौर के एक खत्री भाई दयाराम। इनके साथ गुरु अन्दर गये। कुछ देर बाद लोगों ने शिविर के नीचे से रक्त की धार बहती देखी, और तब गुरु रक्त-रंजित तलवार लिए शिविर के बाहर आये तथा एक और बलिदान के लिए आह्वान किया। भीड़ में खामोशी बनी रही और कुछ लोगों ने यह मानकर कि गुरु पागल हो गये, सरकना शुरू किया। तब गुरु की पुकार पर दिल्ली के जाट धरमदास उठ खड़े हुए, गुरु के साथ शिविर में गये और फिर भीड़ ने शिविर के नीचे से रक्त की धार बहती देखी। गुरु ने और सिर चाहे और एक के बाद एक, मोहकामचन्द, साहेबचन्द तथा हिम्मतराय गुरु की पुकार पर उठ खड़े हुए और शिविर में उसी तरह गये। भीड़ बलिदान के इस दृश्य पर मूक बैठी रही, किन्तु थोड़ी ही देर बाद गुरु ने पाँचों महान् धर्म भक्तों को बुलाया और वे केसरिया बाना धारण किए तथा अपने हाथों में चमचमाती तलवार लिए आ खड़े हुए। स्तब्ध भीड़ से गुरु ने कहा—"मेरे प्यारे सिक्खो, ये पाँच सिक्ख परीक्षा में सफल हुए हैं, उन्होंने ऐसी भक्ति दिखाई है कि मैं अब अपना जीवन उनके लिए बलिदान करने को तैयार हूं। वे मेरे स्वरूप हैं और मैं उनके रूप में हूं। मैंने इन वीर सिक्खों को मारा नहीं था, बल्कि मैंने पाँच बकरों को कृपान की धार उतारा था।" बैशाखी उत्सव के दिन अर्थात् १३ अप्रैल, १६९९ को प्रथम पांच सिंहों का अमृत पान से नाम करण हुआ। चरणामृत द्वारा शुद्धिकरण की प्रथा छोड़कर दुधारे खण्डे द्वारा लौह के बाटे में अमृत तैयार कर नामकरण हुआ और इस प्रकार सियारों को सिंह में बदल दिया गया तथा सिक्ख शिष्य से सिंह में परिणत हो गये। और उसी दिन खालसा अर्थात् विशुद्ध मनुष्य का जन्म हुआ। इतिहासकार मुहम्मद लतीफ के अनुसार १५ दिनों के अन्दर लगभग ८०,००० सिक्खों ने अमृतपान कर खालसा का रूप धारण किया। और इस तरह तीसरा पंथ प्रारम्भ हुआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'वाह गुरुजी का भयो खालसा सु नीका,
वाह गुरुजी मिल फतेह जो बुलाई है।
पीर बादशाह करामाती जै अपर पन्थ,
हिन्दु कि तुर्क हूं कि कान को मिटाई है।
तीसरा मजहब जब देख के अजब महां,
बैरी के गजब परियाँ छीने ठकुराई है।
धरम स्थापने को पापन के खापने को,
गुरु जपने को नई रीत यों चलाई है।'

मानवता को श्री गुरु गोविन्दसिंह की यह सबसे बड़ी देन है। धर्म कोई भी बुरा नहीं होता और वह दूसरे धर्म के अनुयायियों पर जबर की शिक्षा नहीं देता। उन्होंने दुर्बल और दलितों एवं न्याय के हित की रक्षा तथा मुगल-सम्राट् औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध धर्म-युद्ध लड़ने का निश्चय किया।

लेकिन गुरु गोविन्दसिंह ने इस्लाम के विरुद्ध जेहाद नहीं किया था। अपने जीवन-काल में तथा अपने प्रवचनों में गुरु गोविन्दसिंह ने आदमी-आदमी के बीच भेदभाव कभी नहीं बरता; क्योंकि वे उन सभी लोगों को एक ही परम प्रकाश का अंश मानते थे।

गुरु वाक्य है : 'एक पिता एकस के हम वारिक', और यह भी फरमाया कि 'हिन्दु-तुर्क दोऊ राफजी इमाम साफी, मानस की जात सभै एके पहचानवों।' गुरु गोविन्दसिंह का पूरा जीवन बलिदान का प्रतीक रहा, लेकिन उन्होंने शत्रु के सामने कभी कमजोरी नहीं दिखाई। जब गुरु ने देखा कि मुगल सम्राट औरंगजेब इस्लाम को अपने धर्मोन्माद एवं कट्टरता से फैला रहा था, और बलपूर्वक धर्म-परिवर्तन हो रहे थे एवं हिन्दू तलवार के घाट उतारे जा रहे थे और महान् बलिदान भी मुगल सम्राट का रुख बदलने में असफल हुआ तो उन्होंने यह घोषित किया कि 'चूं कार अजू हमा हीलरा दर गुजशत, हिलाल अस्त बुर्दन वा शमशीर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दस्त' कि जब किसी हीले से भी काम न निकले, तो तलवार उठाना बिलकुल जायज है।

उन्होंने यह भी घोषित किया कि तलवार उन सभी मान्य देवियों का जिनका नाम हिन्दू लोग वीरता और अन्याय के संहार के लिये लेते हैं, अवतार स्वरूप है। चण्डी, भवानी, भगवती, दुर्गा या काली जिस नाम से भी आप पुकारें, तलवार ही खालसा के लिये सर्वश्रेष्ठ पीर है। दस वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने पिता को कश्मीर के ब्राह्मणों के बीच बोलते सुना, जिन्होंने कट्टर मुगल सम्राट औरंगजेब के आदेशों के अधीन जबरन धर्म-परिवर्तन की दिल हिलाने वाली कहानियां कही थीं। उन लोगों ने कहा था कि गुरु तेगबहादुर जैसी महान् आत्मा का बलिदान ही कट्टर पंथियों के दिलो-दिमाग में परिवर्तन ला सकता है, दस वर्ष की छोटी उम्र के बालक गोविन्दराय ही थे, जिन्होंने कहा कि—"हे पूज्य पिता! इस महान् कार्य के लिए आपसे बढ़कर और कौन पवित्र आत्मा हो सकती है।" इस छोटे बालक में इतना साहस था कि चांदनी चौक के महान् बलिदान के बाद जब इनके पिता का सिर चोरी से इनके सामने लाया गया था, उसे देखकर गरजे और कहा कि सिंह का रूप ऐसा हो, जो छुपाया छुप न सके और हर कठिनाई को वीरता से पार करे, छुपकर नहीं। वर्षों बाद, जब खालसा सेना का संगठन हो चुका था और श्री गुरु गोविन्दसिंह चार वीर पुत्रों के पिता थे, उन्होंने अपने हाथों दो पुत्रों अजीतसिंह और जुझारसिंह को कच्चीगढ़ी की मशहूर लड़ाई में मुगलों की अपार सेना के विरुद्ध अकेले लड़ने के लिए भेज दिया, वे भली-भांति जानते हुए कि वे वापस नहीं लौटेंगे। उनके छोटे साहिबजादे ८ और १० वर्षीय जोराबरसिंह और फतहसिंह मुगल सूबेदार के आदेश से सरहिन्द में दीवाल में जीवित चुने गये। उन बच्चो ने धर्म-परिवर्तन से इन्कार करके मृत्यु को गले लगाना उचित समझा। उसके बाद जब वह अपनी सेना से बिछड़ गये, तो भी उनका साहस नहीं टूटा। औरंगजेब को एक पत्र लिखा, जिसमें उसकी बुजदिली और दगाबाजी का वर्णन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किया। उस पत्र को 'ज़फरनामा' कहा जाता है, जिसका अर्थ है, शाही पत्र जो एक राजा दूसरे राजा को लिखता है। उन्होंने पूर्व में जन्म लिया, उत्तर में खालसा रचा और दक्षिण में शरीर छोड़ा। इस तरह उनकी वीरता का संदेश समस्त भारत में गूंजा और सदैव गूंजता रहेगा। वह किसी समुदाय के गुरु नहीं थे, बल्कि पूरे भारत को वीरता एवं आत्म-बल का सन्देश और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान लेकर आये थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

श्री नारायण भक्त

२१. एकता के जन्मदाता

गुरु गोविन्दसिंह सिक्खों के दशम गुरु थे। ये बाल्यकाल से ही स्वतंत्रता-प्रेमी थे और उस छोटी अवस्था में ही अपने पिता को उन्होंने स्वतन्त्रता के लिए आहुति बन जाने की मंत्रणा दी थी। इन्होंने गुरु नानकदेव के बनाए आदर्शों एवं सिद्धांतों का अनुसरण किया। गुरु नानक का विचार था कि हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही जातियों में सैद्धांतिक एकता लाने का प्रयत्न किया जाय। इसी आदर्श का पालन करने में गुरु नानक के अनेक शिष्यों एवं समर्थकों को अपनी जान देनी पड़ी।

वास्तव में गुरु गोविन्दसिंह सच्चे गुरु थे। गुरु का वास्तविक अर्थ होता है महान्; ऐसा महान्, जो सर्वत्र ही अपनी महानता को देख सके, ऐसा महान् जो सृष्टि की समस्त वस्तुओं में समभाव रख सके। गुरु वही है, जिसे परमात्मा के स्वरूप का सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते सदैव बोध रहे और जिसकी मनःस्थिति महान् से महान् सुख एवं दुःख में एकदम समान बनी रहे।

मुगलों का विरोध

मुगल-साम्राज्य का शासक औरंगजेब गुरु नानक के उक्त आदर्श का विरोधी था। वह अपने-आपको ईश्वर का प्रतीक समझता था। उसका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह विश्वास था कि ईश्वर ने समस्त संसार में इस्लाम धर्म का प्रचार करने के लिए ही उसे भेजा है। गुरु गोविन्दसिंह जिस समय छोटी अवस्था में थे, उसी समय औरंगजेब ने गुरु तेगबहादुर की हत्या करा दी। गुरु गोविन्दसिंह ने औरंगजेब की उस चाल से समझ लिया कि यह हिन्दू-धर्म का द्रोही है। तब उन्होंने भारत की विशृंखलित जातियों को, अपमानित जातियों को, दलित वर्ग को, एक सूत्र में पिरोया। हिन्दुओं की चिर अस्पृश्य जाति को, जो ठुकराई गई थी, कुचली गई थी—उसी को संगठित कर 'खालसा' दल तैयार करके अनन्दपुर को अपना दुर्ग बनाया। ऐसा दल, जिसका एक-एक सैनिक सवा लाख से मुठभेड़ ले सकता था। कतिपय इतिहासकारों ने गुरु गोविन्दसिंह पर यह आरोप लगाया है कि वे भारत में इस्लाम-धर्म के सबसे बड़े विरोधी थे, परन्तु सूफी सैयद बालाशाह ने इन आरोपों को निराधार सिद्ध किया है। उनका युद्ध, संघर्ष पाप से था, पापियों से नहीं। यही कारण है कि उनके मुसलमान मित्रों ने उनको सबसे बड़ी सहायता पहुंचायी है। यही नहीं, सैयद बालाशाह का यह भी कहना है कि गुरु गोविन्दसिंह के कार्यों के परिणाम-स्वरूप भारत में हिन्दू-धर्म लुप्त होने से बच गया।

जब औरंगजेब के क्रूर चंगुल में फंसकर उनके चारों बच्चे मर चुके थे, तब अपने लड़कों की निर्मम हत्या का लक्ष्य करते हुए आपने अपनी पत्नी से कहा था, "चार बच्चे बलिवेदी पर चढ़ चुके हैं, परन्तु उनकी जगह पर तुम्हारे पास लाखों खालसा सैनिक मौजूद हैं।"

किसी धर्म से विरोध नहीं

गुरु गोविन्दसिंह में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे किसी भी धर्म के विरोधी नहीं थे। उन्होंने एक स्थान पर स्पष्ट कहा है—"मन्दिर और मस्जिद एक हैं, नमाज और पूजा भी अभिन्न है, दोनों का लक्ष्य एक ही है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु गोविन्दसिंह ने स्पष्ट कर दिया है कि मेरा किसी भी धर्म से विरोध नहीं है।

'इस कारण प्रभु मोहि पठायो,
तब मैं जगत जनम धर आयो।
जिस दिन कही उने तिम कहिही,
और किसी तै वैर न गहिहीं।'

गुरु गोविन्दसिंह में अपने लिए कोई वस्तु नहीं थी। उन्होंने अपने 'निज' को अत्यन्त व्यापक और महान् बना दिया था। उनका सब-कुछ 'खालसा' के लिए था। 'खालसा' ही उनके पुत्र थे, उनकी सम्पत्ति थे। अर्थात् एक उत्तम, शुद्ध और स्वाधीन बिरादरी कायम करना उनका अभीष्ट था। उनका यह पूर्ण विश्वास था कि ईश्वर ने उन्हें वास्तविक धर्म की दीक्षा देने, नेकी का प्रचार करने और अधर्म का नाश करने के लिए संसार में भेजा है। उनकी यह भी धारणा थी कि 'खालसा' में विश्वास करने से ही ईश्वर से साक्षात्कार हो जायेगा। उन्होंने सिक्खों की 'पहुल' (दीक्षा) लेने, बिरादरी (सिक्ख) में शामिल होने और भगवान की पूजा को आवश्यक बतलाया। हरएक सिक्ख के लिए यह जरूरी हो गया कि वह केश रखे, अस्त्र ग्रहण करे तथा अपने नाम के पीछे 'सिंह' की उपाधि लिखे। नाम के आगे 'सिंह' ने धर्म भीरु सिक्खों को वास्तव में सिंहवत् बना दिया। हर सिक्ख को मनोवैज्ञानिक रूप से यह सोचने की प्रेरणा मिली कि उसकी एक विशेष राष्ट्रीयता है और उसमें वे गुण होने चाहिएं, जो अपने नामों के आगे 'सिंह' शब्द लगाने वाले राजपूतों में पाये जाते हैं।

संस्कृति के पोषक

गुरु गोविन्दसिंह भारतीय संस्कृति के महान् उद्धारक एवं प्रबल पोषक थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने पुराणों, रामायण और महाभारत के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पात्रों की जीवनियां अनुवादित करवाईं। इस कार्य में अनेक कवियों को लगाया। उनका प्रधान लक्ष्य इसमें यही था कि जिससे राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण हो—ऐसा राष्ट्रीय साहित्य, जिससे मुर्दों में संजीवनी शक्ति उत्पन्न हो सके, जिससे वे अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार कर सकें।

गुरु गोविन्दसिंहजी इतिहास की महान विभूतियों में से हैं। कुछ इतिहासकारों ने इनकी तुलना नैपोलियन से की है, परन्तु नैपोलियन केवल एक सैनिक योद्धा ही था, जिसने एक बड़ा साम्राज्य कायम करने के ध्येय में, दूसरे देशों से लड़ाई की थी। उन्हें न साम्राज्य कायम करने की इच्छा थी और न इस उद्देश्य की पूर्ति में उन्होंने किसी से बड़ी लड़ाइयां ही लड़ीं। वे एक समाज-सुधारक थे। उन्होने आपसी वर्णभेद को समाप्त करने का भरसक प्रयत्न किया था। इन सभी विशेषताओं के साथ आप एक विद्वान एवं कवि भी थे।

एकता के जन्मदाता

गुरु नानकदेव तथा अन्य गुरुओं ने सिक्खों का संगठन बनाया था, वह नैतिकता प्रधान संगठन था। गोविन्दसिंह ने सिक्खों की कमियों, कमज़ोरियों को पहचाना। उन्होने देखा, सिक्खों के पास धार्मिकता है, उदारता है, पर एकता नहीं। इससे भी बड़ी वस्तु जिसका सिक्खों में अभाव है, वह है राष्ट्रीयता। यही कारण है कि वे संख्या में अनेक होते हुए भी एक नहीं। उदार होते हुए भी स्वार्थ का परित्याग नहीं कर सकते। इसलिए गुरु गोविन्दसिंह सिक्खों को एक राष्ट्रीय आधार पर संगठन करने में तन-मन-धन से जुट गए।

राष्ट्रीयता के लिए पहली आवश्यकता होती है एकता की। गुरु गोविन्दसिंह ने देखा कि भारत की जाति-प्रथा, एकता की प्राप्ति में बाधक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो रही है। उन्होंने इस प्रथा को समाप्त कर देने की ठान ली। उन्होंने घोषणा कर दी कि जो व्यक्ति जाति-प्रथा न छोड़ेगा, वह सच्चे अर्थ में सिक्ख नहीं। उन्होंने चातुर्वर्ण्य को भी स्वीकार नहीं किया और खालसा भ्रातृ-मण्डल की स्थापना की, जिसमें धनी, निर्धन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सबके समान अधिकार रखे गये। उन्होंने हर वर्ण तथा हर वर्ग के व्यक्ति को समान भाव से खालसा में शामिल किया। सबको समान मात्रा में अपने उपदेशों का अमृत पान कराया। उनके पंज प्यारों (पांच प्रिय शिष्यों) में एक शिष्य खत्री था, बाकी चारों शूद्र थे।

गुरु गोविन्दसिंह ने अपनी शासन-व्यवस्था में लोकतांत्रिक समानता को व्यवहारिक रूप देने में समस्त धर्माचार्यों को मात कर दिया। खालसा भ्रातृ-मण्डल में प्रधान या नेता के भी उतने ही अधिकार होते हैं, जितने अन्य किसी दूसरे सदस्य के। इसे कोई विशेषाधिकार या विशेष सुविधाएँ प्राप्त नहीं होतीं। गुरु गोविन्दसिंह का कहना है कि प्रधान वही व्यक्ति बनाया जाना चाहिए, जो सर्वसम्मति से मान्य ठहरे।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि कोई भी धार्मिक नेता या धर्म संस्थापक ऐसा नहीं हुआ, जिसने अपने लिये विशेष अधिकार या अन्य सुविधाएँ सुरक्षित न रख ली हों, पर गुरु गोविन्दसिंह इसके अपवाद थे। आपने 'पंज प्यारों' को खालसा भ्रातृ-मण्डल में विधिवत् दीक्षित करके वह स्वयं भी पंज प्यारों के द्वारा खालसा में विधिवत् शामिल हुए। इस तरह वह स्वयं उन्हीं अधिकारों के हकदार बने, जो खालसा में किसी भी दूसरे सदस्य के होते हैं।

सिक्खों की एकता को मजबूत करने के लिए आपने अभिवादन करने के सब तरीकों को हटाकर एक नया तरीका स्थिर किया। उन्होंने अभिवादन के समय बोलने की एक शब्दावलि 'वाह गुरुजी का खालसा, वाह गुरुजी की फतह' स्थिर की। इसने सिक्खों में एकता की जड़ जमाने में बड़ी सहायता दी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस तरह गुरुजी ने वह काम कर दिखाया, जो उनके पहले के गुरुओं ने नहीं किया। उस महान् योद्धा, महान् साधक का जन्म पटना शहर में हुआ, जहाँ पर उनकी तीन सौवीं जयन्ती (१७ फरवरी, सन् १९६७ ई० को) बड़े ही धूमधाम से समूचे देश भर में मनाई गई थी।

Sri Pratap Singh
Library
SRINAGAR.

० ० ०

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुरु गोविन्दसिंह की रचनाएं

१ जापु
२ अकाल स्तुति
३ विचित्र नाटक (आत्मकथा)
४ चण्डी चरित्र (प्रथम)
५ चण्डी चरित्र (द्वितीय)
६ वार भगतीजी की (चण्डी दी वार) पंजाबी में
७ ज्ञान प्रबोध
८ चौबीस अवतार
९ महदी मीर
१० ब्रह्मावतार
११ रुद्रावतार
१२ स्फुट सवैये
१३ शस्त्र नाममाला
१४ चरित्रोपाख्यान
१५ ज़फ़रनामा (फ़ारसी)
१६ हिकायतें (फारसी)

गुरुजी की इन रचनाओं के संग्रह को 'दशमग्रन्थ' कहा जाता है।

बड़े आकार के १४२२ पृष्ठों के इस संग्रह में पंजाबी और फारसी की रचनाएं ५० पृष्ठों में आ गई हैं। शेष रचनाएं हिन्दी में हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रमुख तिथियां

गुरु गोविन्दसिंह का जन्म	२६ दिसम्बर, १६६६ ई०
गुरु तेगबहादुर का दिल्ली में बलिदान	११ नवम्बर, १६७५ ई०
भंगाणी का युद्ध	फरवरी, १६८९ ई०
'खालसा' का निर्माण	३० मार्च, १६९९ ई०
आनन्दपुर का युद्ध	१७०० ई०
आनन्दपुर दुर्ग का त्याग	२१ दिसम्बर, १७०४ ई०
बहादुरशाह से भेंट	२ अगस्त, १७०७ ई०
देहावसान	७ अक्तूबर, १७०८ ई०

SPS
294.6 G 95 GN
32851

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

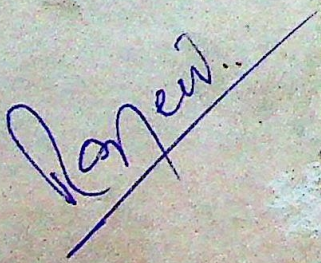

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-Mo